सन्तुलित मार्ग

शैख़ मुहम्मद ग़ज़ाली (रह०)

विषय-सूची

विषय **पृ०**

- सन्तुलित मार्ग 5
- खाना-पीना 7
- लिबास 20
- मकान 24
- संन्यास और फ़क़ीरी 28
- अच्छा मनोरंजन 37

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

"अल्लाह के नाम से जो अत्यन्त कृपाशील और बड़ा दयावान् है।"

सन्तुलित मार्ग

इस्लाम ने मुसलमानों की निजी ज़िन्दगी के बारे में बहुत-सी हिदायतें दी हैं, जिनका मक़सद उनके जिस्मानी और नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) मामलों को मुनज़्ज़म (संगठित) करके सही बुनियाद पर मज़बूत और पायेदार करना है। ये हिदायतें खाने-पीने, रहने-सहने, लिबास और ज़िन्दगी की ख़ाहिशों और रुझानों वग़ैरा के बारे में भी हैं, जिनकी पैरवी करके इनसान न तबाह करनेवाली रहबानियत (संन्यास) में डूबता है और न बेलगाम माद्दा-परस्ती (भौतिकवाद) में। क्योंकि इन हिदायतों की बुनियाद बीच की राह और एतिदाल (सन्तुलन) पर है। इसी लिए इनपर अमल करना भी आसान है।

इस्लाम अपनी तालीमात और हिदायतों में जिस्म और दिल के तक़ाज़ों और माँगों के बीच तालमेल पैदा करके एक को दूसरे पर बेजा दख़ल-अन्दाज़ी और ज़्यादती से रोकता है और उन दोनों की ज़रूरतों में आपसी जोड़ को इनसान की मौजूदा ज़िन्दगी और बाद की ज़िन्दगी में उसके पैग़ाम और ज़िम्मेदारी की अदाइगी में मददगार समझता है। आसमानी हिदायतों के बग़ैर दुनिया के लोग अपने लिए जो नज़रिए बना लेते हैं वे कम ही उसमें कामयाब हो पाते हैं कि जिस्म की ज़रूरतों और रूह (आत्मा) के शौक़ और उमंगों के बीच और दुनिया, जिससे हमारे सफ़र की शुरुआत होती है, और आख़िरत, जहाँ हमें आख़िरकार अंजाम के लिए पहुँचना है, इन सबके बीच अनुकूलता पैदा कर सकें।

कुछ नज़रिए इस बुनियाद पर क़ायम हैं कि जिस्म को बिलकुल नज़र-अन्दाज़ किया जाए और इस नज़रिए को माननेवाले यह समझते हैं कि रूह जब जिस्म की क़ैद से आज़ाद होगी तभी बुलन्दी तक पहुँच सकेगी। दूसरे नज़रियों में दुनिया की लज़्ज़तों को ही अपना मेहवर (धुरी) बना लिया है। इनके अलावा हर चीज़ को बेक़ीमत समझते हैं। इस्लाम में न लोगों को तंगियों में मुब्तला करनेवाली रहबानियत (संन्यास) है, न अय्याशियों और

मन की इच्छाओं की पैरवी पर क़ायम हैवानियत।

इस सिलसिले में एक वाज़ेह हक़ीक़त का ज़िक्र करना भी ज़रूरी है, वह यह है कि एक सच्चा ईमानवाला ख़ुदा के इनकारियों की तरह इस ज़मीन पर अपनी उम्र को ही सब कुछ नहीं समझता कि मक़सद और ख़्वाहिशों को पूरा करने का यही पहला और आख़िरी मौक़ा है। इस नज़रिए के माननेवाले अपनी पाकीज़गी (पवित्रता) खो देते हैं और अपने नफ़्स (मन) की ख़्वाहिशों को पूरा करने के लिए ही जीते हैं। अल्लाह का फ़रमान है–

> "ईमान लानेवालों और नेक अमल करनेवालों को अल्लाह उन जन्नतों में दाख़िल करेगा जिनके नीचे नहरें बहती हैं, और हक़ के इनकारी बस दुनिया की कुछ दिनों की ज़िन्दगी के मज़े लूट रहे हैं; जानवरों की तरह खा-पी रहे हैं, और उनका आख़िरी ठिकाना जहन्नम है।" (क़ुरआन, सूरा-47 मुहम्मद, आयत-12)

दूसरी जगह यह फ़रमान है–

> "नामुमकिन नहीं कि एक वक़्त वह आ जाए जब वही लोग जिन्होंने आज (इस्लाम की दावत को क़बूल करने से) इनकार कर दिया है, पछता-पछता कर कहेंगे कि काश हमने सिर झुका कर मान लिया होता! छोड़ो इन्हें, खाएँ-पिएँ, मज़े करें और भुलावे में डाले रखे इनको झूठी उम्मीद। जल्द ही इन्हें मालूम हो जाएगा।" (क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, आयतें-2, 3)

सच्चा मुसलमान आख़िरत पर ईमान रखता है। वह अपनी उम्मीदों और ख़्वाहिशों का मर्कज़ (केन्द्र) दुनिया और आख़िरत दोनों को बनाता है और हाल (वर्तमान) और मुस्तक़बिल (भविष्य) दोनों में भलाई चाहता है, जैसा कि क़ुरआन मजीद ने बताया है। दोनों ज़िन्दगियों में नेमत और ख़ुशक़िस्मती चाहना अल्लाह तआला की बेहतरीन याद है–

> "फिर जब अपने हज के अरकान (रस्में) अदा कर चुको, तो जिस तरह पहले अपने बाप-दादा का ज़िक्र करते थे, उसी तरह अब अल्लाह का ज़िक्र करो, बल्कि उससे भी बढ़कर। (मगर अल्लाह को याद करनेवाले लोगों में भी बहुत फ़र्क़ है) उनमें से

कोई तो ऐसा है जो कहता है कि ऐ हमारे रब! हमें दुनिया में ही सब कुछ दे दे। ऐसे आदमी के लिए आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं। और कोई कहता है कि ऐ हमारे रब! हमें दुनिया में भी भलाई दे और आख़िरत में भी भलाई दे, और आग के अज़ाब से हमें बचा। ऐसे लोग अपनी कमाई के मुताबिक़ (दोनों जगह) हिस्सा पाएँगे।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयतें-200 से 202)

क़ारून को जो नसीहत की गई थी उसमें दोनों ज़िन्दगियों के लिए जिद्दो-जुहद पर ज़ोर दिया गया है, क्योंकि दुनिया आख़िरत का ज़रिआ है और ज़रिआ (साधन) का ठीक होना मक़सद की कामयाबी की ज़मानत है। अल्लाह तआला का फ़रमान है—

"जो माल अल्लाह ने तुझे दिया है उससे आख़िरत का घर बनाने की फ़िक्र कर और दुनिया में से भी अपना हिस्सा न भूल। एहसान कर जिस तरह अल्लाह ने तेरे साथ एहसान किया है, और ज़मीन में फ़साद बरपा करने की कोशिश न कर, अल्लाह फ़साद फैलानेवालों को पसन्द नहीं करता।"

(क़ुरआन, सूरा-28 क़सस, आयत-77)

खाना-पीना

इन बुनियादों पर इस्लाम इनसान को हिदायत करता है कि वह अपने पेट का बन्दा बनकर न रह जाए कि वह दुनिया में सिर्फ़ खाने-पीने (और अपनी जिस्मानी ख़ाहिशों को पूरा करने) के लिए ज़िन्दा रहे और उसकी सारी दौड़-धूप का मक़सद इसके सिवा कुछ न हो कि उसकी डाइनिंग टेबल और दस्तरख़ान तरह-तरह के खानों और पकवानों से भरा रहे और अगर ऐसा न हो पाए तो ग़म और ग़ुस्से में मुब्तला हो जाए और यह समझने लगे कि क़िस्मत उसके पीछे पड़ी हुई है।

जो लोग ख़ूब पेट भरने में ही माहिर होते हैं और तरह-तरह के खाने-पीने की चीज़ों का ईजाद (अविष्कार) करते हैं और उन्हें मज़ेदार और लज़ीज़

बनाने ही में लगे रहते हैं, वे कोई बड़ा काम अंजाम देने के लायक़ नहीं होते, न किसी क़ुरबानी और सख़्त कोशिश करने की हिम्मत कर सकते हैं।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं–

> “जो लोग दुनिया में सबसे ज़्यादा सेर और पेट भरे रहते हैं, वे क़ियामत के दिन सबसे ज़्यादा लम्बे वक़्त तक भूखे रहेंगे।”
> (हदीस : बज़्ज़ार)

यह सभी जानते हैं कि बहुत-से ख़तरनाक रोग मेदे को उसकी हज़्म करने की सलाहियत से ज़्यादा बोझिल किए रखने की वजह से पैदा होते हैं।

खाने की मिक़दार (मात्रा) में कमी सिर्फ़ तक़वा और परहेज़ या बग़ैर किसी मक़सद के कम करने से हासिल नहीं होती, बल्कि सही तरीक़ा यह है कि इनसान बड़े मक़सद को हासिल करने में लगे। इस तरह खेल-कूद व तमाशों, सुस्ती और लज़्ज़त-परस्तियों से उसका ध्यान फिर जाएगा।

एक बार ऐसा हुआ कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने ख़ुदा के इनकारी की मेहमान-नवाज़ी की। उसे एक बकरी का दूध दूह कर पिलाया गया, फिर दूसरी का, फिर तीसरी का, यहाँ तक कि वह सात बकरियों का दूध पी गया। फिर दूसरे दिन वह इस्लाम ले आया, फिर उसे एक बकरी का दूध दूहकर पिलाया गया तो वह पी गया, लेकिन दूसरी बकरी का दूध पूरा नहीं पी सका। तब अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

> “मोमिन एक आँत में पीता है और ख़ुदा का इनकारी सात आँतों में।” (हदीस : मुस्लिम)

यह इसलिए कि उस आदमी ने इस्लाम लाने के बाद जब अपनी ज़िम्मेदारियों को महसूस किया और आख़िरत (परलोक) के हिसाब पर निगाह डाली तो एक ज़्यादा ऊँची और मक़सदवाली ज़िन्दगी की फ़िक्र ने उसपर असर डाला और ज़्यादा खाने-पीने से उसे दिलचस्पी बाक़ी न रही।

सच्चाई यह है कि खाने-पीने की लज़्ज़तें और दुनिया का साज़ो-सामान इससे कहीं कमतर हैं कि इनसान आज के दौर की तरह उनके लिए अपनी जान मुश्किल में डाले।

नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं–

> "आदमी के खाने को दुनिया की मिसाल बनाया गया है, वह उसमें तरह-तरह के मसाले और नमक लगाकर (लज़ीज़) बनाता है फिर देखो उसका अंजाम क्या होता है।"
>
> (हदीस : अहमद)

इस बात से कोई इस ग़लतफ़हमी में न पड़े कि इसका मक़सद मुसलमान को ज़िन्दगी से दूर करना और उसकी नेमतों से बेज़ार करना है। इस्लाम का यह मक़सद नहीं हो सकता। हलाल को हराम करना भी हराम को हलाल करने की तरह ही संगीन जुर्म है। यह मुसलमान पर अल्लाह का हक़ है कि हराम उसके सब्र पर और हलाल उसके शुक्र पर ग़ालिब न हो जाए।

ज़िन्दगी में अपने हक़ और भलाई से मज़ा उठाने में कोई बुराई नहीं है। खुदा का फ़रमान है—

> "जो लोग ईमान ले आए और नेक अमल करने लगे, उन्होंने पहले जो खाया-पिया था उसपर कोई पकड़ न होगी, शर्त यह है कि वे आगे उन चीज़ों से बचे रहें जो हराम की गई हैं और ईमान पर साबित क़दम रहें और अच्छे काम करें, फिर जिस-जिस चीज़ से रोका जाए उससे रुकें और जो खुदा का हुक्म हो उसे मानें, फिर खुदा से डरते हुए नेक रवैया रखें। अल्लाह नेक किरदार लोगों को पसन्द करता है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-93)

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के सहाबा (रज़ि॰) अपनी निजी ज़िन्दगियों में इस क़ौल (कथन) के मुताबिक़ अमल करते थे—

> "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, जो पाक चीज़ें अल्लाह ने तुम्हारे लिए हलाल की हैं उन्हें हराम न कर लो और हद से आगे न बढ़ो, अल्लाह को ज़्यादती करनेवाले सख़्त नापसन्द हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-87)

खाने-पीने के बारे में एक हदीस बहुत मशहूर है।

हज़रत मिक़दाम-बिन-मादीकरिब (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को फ़रमाते हुए सुना—

"आदम के बेटों ने पेट से ज़्यादा बुरा कोई बरतन नहीं भरा। आदम के बेटों के लिए कुछ छोटे लुक़मे (निवाले) काफ़ी हैं जो उसकी रीढ़ की हड्डी को सीधा रख सकें, अगर (इससे ज़्यादा) ज़रूरी ही है तो फिर (इतना तो ज़रूर करें कि पेट का) एक तिहाई हिस्सा खाने के लिए, एक तिहाई हिस्सा पानी के लिए और एक तिहाई (ख़ाली) हिस्सा साँस के लिए।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

हाफ़िज़ इब्ने-रजब (रह॰) ने इस हदीस की तशरीह (व्याख्या) में अबुल-क़ासिम बग़वी का क़ौल नक़ल किया है कि इस हदीस का पसमंज़र यह है कि जब अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने ख़ैबर फ़तह किया तो वहाँ की ज़मीन हरी-भरी और फलों से भरी हुई थी। लोगों ने ख़ूब फल खाए जिससे उन्हें बुख़ार आ गया, तब उन्होंने नबी (सल्ल॰) से शिकायत की तो आप (सल्ल॰) ने कहा कि "बुख़ार मौत की दस्तक, ज़मीन में अल्लाह की क़ैद और आग का एक टुकड़ा है।" जब बुख़ार आए तो शनान में पानी ठंडा करके (मग़रिब व इशा) की नमाज़ों के बीच अपने बदन पर डालो। उन लोगों ने ऐसा ही किया और बुख़ार चला गया तब आप (सल्ल॰) ने यह हदीस बयान फ़रमाई।

यह हदीस जिस्मानी सेहत के लिए तिब्बी (औषधीय) उसूलों का मजमूआ है।

मशहूर पारसी डॉक्टर इब्ने-अबी-मासोया के बारे में आता है कि जब उसने अबू-ख़ैसमा की किताब में यह हदीस पढ़ी तो कहा कि "अगर लोग इन बातों पर अमल करें तो बीमारियों से महफ़ूज़ हो जाएँ और अस्पताल और दवाओं की दुकानें वीरान हो जाएँ।"

अरब का मशहूर हकीम हारिस-बिन-कलदा का बयान है कि इनसानों और जानवरों को हलाक यानी बरबाद करनेवाली चीज़ एक खाने के हज़्म होने से पहले दूसरा खाना खाना है।

किसी बुज़ुर्ग का बयान है कि अगर क़ब्रवालों से पूछा जाए कि तुम्हारी मौत की वजह क्या थी तो वे यही बताएँगे कि ज़्यादा खाना। जिस्मानी सेहत

के ताल्लुक़ से कम खाने के इतने फ़ायदे हैं।

और जहाँ तक क़म खाने से रूहानी फ़ायदे यानी दिल-दिमाग़ की सलामती का ताल्लुक़ है, तो वह बिलकुल साफ़ है। इससे दिल में हमदर्दी और नर्मी पैदा होती है, ज़ेहन को ताक़त मिलती है, नफ़्स में इन्किसारी और आज़िज़ी पैदा होती है, नफ़्सानी ख़ाहिशें कमज़ोर पड़ती हैं और ग़ुस्सा कम होता है।

इमाम अहमद (रह०) से पूछा गया कि क्या पेट भर खाने से आदमी अपने दिल में नरमी महसूस कर सकता है? उन्होंने जवाब दिया कि "मेरे ख़याल में नहीं।"

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) के पास कोई आदमी हाज़्मे की ताक़त बढ़ानेवाली दवा (हाज़्मे की दवा) लेकर आया तो आपने पूछा– यह क्या है? उसने बताया कि इससे खाना हज़्म होता है। उन्होंने कहा, "मैं इसे क्या करूँगा, मैं तो महीनेभर में एक बार भी पेट भरकर खाना नहीं खाता।"

एक रिवायत में है कि उन्होंने फ़रमाया कि जब से इस्लाम लाया हूँ, मैंने पेट भरकर खाना नहीं खाया।

हज़रत अबू-उबैदा-बिन-ख़वास (रह०) का क़ौल है कि तुम्हारी बरबादी पेट भर खाने में और तुम्हारी हिफ़ाज़त भूखे रहने में है। अगर तुमने बहुत ज़्यादा खा लिया तो तबीयत बोझल हो जाएगी और सो जाओगे, दुश्मन तुमपर मौक़ा पाकर हमलावर हो जाएगा और अगर भूखे पेट रहे तो तुम ख़ुद दुश्मन की घात में रहोगे।

हज़रत अबू-सुलैमान दारानी (रह०) कहते हैं कि अगर तुम्हारे सामने दुनिया और आख़िरत की कोई ज़रूरत हो तो उसे पहले पूरा कर लो फिर खाना खाओ, क्योंकि खाने के साथ अक़्ल का ताल्लुक़ बाक़ी नहीं रहता।

हज़रत मालिक-बिन-दीनार (रह०) फ़रमाते हैं कि मोमिन को सबसे ज़्यादा फ़िक्र अपने पेट की नहीं होनी चाहिए, न यह कि उसकी शहवत (कामवासना) ग़ालिब रहे।

हज़रत हसन-बिन-अब्दुर्रहमान ने हज़रत हसन बसरी (रह०) या किसी और बुज़ुर्ग का क़ौल नक़ल किया है कि हज़रत आदम (अलैहि०) की मुसीबत

खाने की वजह से आई और क़ियामत तक उनकी औलाद के लिए भी खाना आज़माइश का सबब बना रहेगा। पहले कहा जाता था कि जिसने अपने पेट पर क़ाबू रखा उसने सारे नेक कामों पर इख़्तियार रखा।

यह भी कहा जाता था कि हिकमत और दानिशमन्दी भरे पेट में अपने ठहरने की जगह नहीं बनाती। हज़रत अब्दुल-अज़ीज़-बिन-अबू-दाऊद (रह०) का क़ौल (कथन) है कि एक तिहाई पेट नेक कामों में मददगार साबित होता है।

हज़रत अबू-इमरान जोती (रह०) कहते हैं कि पहले कहा जाता था कि जो अपना दिल रौशन रखना चाहे वह अपना खाना कम करे।

हज़रत हसन बसरी (रह०) के किसी साथी के सामने खाना पेश किया गया तो उन्होंने कहा कि मैं इतना खा चुका हूँ कि अब खा ही नहीं सकता। हज़रत हसन (रह०) ने कहा, 'सुब्हानल्लाह'! मुसलमान इतना नहीं खाया करता कि फिर खाने की गुंजाइश ही न रह जाए।

उसमान-बिन-ज़ाइदा कहते हैं कि मुझे हज़रत सुफ़ियान सौरी (रह०) ने लिखा कि अगर तुम अपना जिस्म सेहतमन्द रखना और सोना कम करना चाहते हो तो खाना कम खाया करो।

इब्ने-सिमाक कहते हैं कि एक आदमी ने अपने भाई से कहा कि हम लोग अल्लाह के नज़दीक इससे ज़्यादा हक़ीर हैं कि वह हमें भूखा रखे। वह तो अपने औलिया (ख़ास दोस्तों) को भूखा रखता है।

अब्दुल्लाह-इब्ने-अबुल-फ़रज कहते हैं कि मैंने हज़रत अबू-सईद तमीमी (रह०) से पूछा कि क्या डरा हुआ आदमी पेट भरकर खा सकता है? उन्होंने कहा, नहीं। मैंने अर्ज़ किया और जो ग़म में मुब्तला हो? फ़रमाया, नहीं।

हज़रत बशर-बिन-हारिस (रह०) कहते हैं कि मैंने पचास साल से पेटभर खाना नहीं खाया।

आदमी को हलाल भी पेट भरकर नहीं खाना चाहिए क्योंकि अगर वह आज हलाल से ख़ूब पेट भरकर खाएगा तो कल हराम भी खाने लगेगा।

हज़रत इबराहीम-बिन-अदहम (रह०) कहते हैं कि जिसने अपने पेट पर कंट्रोल कर लिया उसने अपने दीन को क़ाबू में रखा और जिसने भूख पर क़ाबू हासिल कर लिया उसने अच्छे अख़लाक़ पर इख़्तियार हासिल कर

लिया। ख़ुदा की नाफ़रमानी व गुनाह भूखे से दूर रहते हैं और पेट भरकर खानेवाले से क़रीब रहते हैं, पेट भरकर खाना दिल को मुर्दा करता है।

हज़रत साबित बिनानी (रह॰) ने बयान किया है कि इबलीस मरदूद एक दिन हज़रत यहया (अलैहि॰) के पास पहुँचा तो उन्होंने उससे पूछा कि मुझपर भी तुम्हारा दाँव चलता है? उसने कहा कि और तो नहीं, बस हाँ कभी-कभी आप पेटभर कर खाना खा लेते हैं तो मैं आपकी तबीयत बोझल करके अल्लाह के ज़िक्र से कुछ ज़रा-सा गाफ़िल कर पाता हूँ। उन्होंने फिर पूछा, और कुछ? उसने कहा, नहीं। हज़रत यहया (अलैहि॰) ने फ़रमाया कि अल्लाह की क़सम! आज के बाद से मैं कभी अपना पेट खाने से पूरा नहीं भरूँगा। तब इबलीस मरदूद ने कहा— ख़ुदा की क़सम! आज के बाद मैं किसी मुसलमान को ख़ैरख़ाही और भलाई की कोई बात नहीं बताऊँगा।

हज़रत अबू-सुलैमान दारानी (रह॰) फ़रमाते हैं कि नफ़्स जब भूखा-प्यासा होता है तो दिल में सफ़ाई और नर्मी पैदा होती है और खाने-पीने से सैर होता है तो दिल अंधा हो जाता है। पेट भरकर खाना दुनिया की कुंजी है और भूख आख़िरत की। दुनिया और आख़िरत की हर भलाई की कुंजी अल्लाह का ख़ौफ़ है। अल्लाह दुनिया तो पसन्दीदा और नापसन्दीदा दोनों तरह के लोगों को देता है, लेकिन हक़ (सत्य) सिर्फ़ अपने ख़ास पसन्दीदा लोगों को देता है। मैं रात में कम खाकर रातभर इबादत करना ज़्यादा पसन्द करता हूँ।

हज़रत अहमद-बिन-अबू-हवारी (रह॰) फ़रमाते हैं कि भूख नेकी पर और पेट भरना बुराई पर आमादा करता है।

हज़रत इमाम शाफ़िई (रह॰) फ़रमाते हैं कि मैंने सोला बरस से पेट-भर खाना नहीं खाया, क्योंकि पेट-भर खाना बदन को भारी करता है, नींद लाता है, इबादत में कमज़ोरी पैदा करता है और ज़हानत व समझदारी कम करता है।

नबी (सल्ल॰) ने कम खाने और बाक़ी खाना दूसरों को खिलाने पर उभारा है। आप (सल्ल॰) फ़रमाते हैं कि एक आदमी का खाना दो के लिए, दो का तीन के लिए और तीन का चार के लिए काफ़ी है।

इसलिए बेहतर यही है कि मुसलमान एक तिहाई पेट खाए, एक तिहाई पेट पानी के लिए रखे और एक तिहाई पेट साँस के लिए ख़ाली रखे।

किसी बुज़ुर्ग की रिवायत है कि बनी-इसराईल के कुछ जवान इबादत में लगे रहते थे, जब खाने का वक़्त आता तो एक आदमी उन्हें ध्यान दिलाता कि ज़्यादा न खाओ वरना ज़्यादा पानी पिओगे फिर ज़्यादा सोओगे, इस तरह ज़्यादा घाटा उठाओगे।

ख़ुद अल्लाह के नबी (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के सहाबा (रज़ि॰) बहुत कम खाना खाते थे।

हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि मदीना आने के बाद से अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) के घरवालों ने कभी लगातार तीन रात तक जौ की रोटी भी पेटभर कर नहीं खाई, यहाँ तक कि आप (सल्ल॰) का इन्तिक़ाल हो गया।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) दुनिया से चले गए और कभी पेटभर जौ की रोटी भी नहीं खाई।

(हदीस : बुख़ारी)

हदीस की किताब मुस्लिम में हज़रत उमर (रज़ि॰) और तिरमिज़ी और इब्ने-माजा में हज़रत अनस (रज़ि॰) और सुलैमान-बिन-सरद (रज़ि॰) की रिवायतों में भी इसी तरह का बयान है।

अल्लाह और उसके नबी (सल्ल॰) ने दिल की ख़ाहिशों पर चलनेवालों की मज़म्मत (निन्दा) की है।

"फिर उनके बाद ऐसे नालायक़ लोग उनके जानशीन (उत्तराधिकारी) हुए जिन्होंने नमाज़ को बरबाद किया और नफ़्स की ख़ाहिशों की पैरवी की। तो क़रीब है कि वे गुमराही के अंजाम से दोचार हों।" (क़ुरआन, सूरा-19 मरयम, आयत-59)

एक रिवायत में है कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि सबसे बेहतर मेरी सदी है फिर जो लोग उसके बाद हैं, फिर जो लोग उसके बाद हैं, फिर ऐसे लोग होंगे जो गवाही देंगे लेकिन ख़ुदा की राह में शहीद होने से भागेंगे, ख़ियानत करेंगे और उनपर किसी क़िस्म का भरोसा नहीं किया जाएगा। नज़रें मानेंगे लेकिन पूरी नहीं करेंगे और उनमें मोटापा ज़ाहिर होगा।

(हदीस : बुख़ारी)

हदीस की किताब मुसनद अहमद में है कि नबी (सल्ल०) ने एक मोटे आदमी को देखा तो हाथ से उसके पेट की तरफ़ इशारा करते हुए कहने लगे कि "अगर यह मोटापा किसी और जगह होता तो तुम्हारे लिए बेहतर होता।"

मुसनद अहमद ही में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) की एक रिवायत है कि अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने कहा कि मैं तुम्हारे बारे में सबसे ज़्यादा जिस चीज़ से डरता हूँ वे पेट और शर्मगाह (गुप्तांग) के बारे में बेहयाई और गुमराह करनेवाली नफ़्सानी ख़ाहिशें हैं।

हदीस की किताब मुसनद बज़्ज़ार में हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने कहा कि मेरी उम्मत के बदतरीन लोग वे होंगे जिनकी परवरिश नेमतों में हुई होगी, कई-कई क़िस्म के खाने खाते होंगे और तरह-तरह के कपड़े पहनते होंगे और चबा-चबाकर बोलते होंगे।

हदीस की किताब इब्ने-माजा में हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) की रिवायत है कि एक आदमी ने अल्लाह के नबी (सल्ल०) के पास डकार ली तो आप (सल्ल०) ने कहा, "अपनी डकार हमसे दूर रखो। दुनिया में ज़्यादा सैर होकर खाने-पीनेवाले क़ियामत के दिन ज़्यादा लम्बे वक़्त तक भूखे रहेंगे।"

बदन के कुछ तक़ाज़े होते हैं और अक़्लमन्द लोग इसमें एक राय हैं कि उनको नज़र-अन्दाज़ करने से बदन को नुक़सान पहुँचता है और जिस चीज़ से भी उन तक़ाज़ों की ग़ैर-ज़रूरी पामाली हो इस्लाम उससे बरी है। इस्लाम ने माद्दापरस्ती (भौतिकवाद) के ख़िलाफ़ जो मुहिम चलाई उसका मक़सद खाने-पीने की लज़्ज़तों में गले-गले तक डूबने और ख़ाहिशों के पीछे बेलगाम दौड़ने की मुख़ालफ़त है।

फिर हर जिस्म की ज़रूरतें दूसरे से अलग हो सकती हैं।

मैं नौजवानी के दौर में ज़ीनों (साढ़ियों) पर कूदते हुए चढ़ा करता था और रास्ते में दौड़ लगाया करता था। एक काम के बाद ही दूसरा काम शुरू कर देने में थकान महसूस नहीं होती थी। अभी कोई अहम लेक्चर तैयार करके फ़ारिग़ ही होता था कि दूसरा लेख लिखना शुरू कर देता और ये सब कुछ ख़ुशदिली के साथ, थकन के एहसास के बग़ैर होता था।

ज़ाहिर है कि इस ढंग से काम करने में खाने-पीने की ज़रूरत और

ख़ाहिश महसूस होगी। बेहतरीन ग़िज़ा के बग़ैर जिस्म इतना बोझ बरदाश्त नहीं कर सकता और मैं इसमें कोई हरज भी नहीं समझता था।

फिर वालिद मरहूम की किताबों में तसव्वुफ़ की कुछ किताबें पढ़ने का मौक़ा मिला तो मैंने खाने-पीने की शदीद ख़ाहिशों को कुचलना शुरू किया जिससे जिस्म में कमज़ोरी महसूस होने लगी और इस मनफ़ी (नकारात्मक) जिद्दो-जुह्द ने काम की सलाहियत (क्षमता) और मिक़दार पर बुरा असर डाल दिया। तब मैंने पुराना काम करने का ढंग फिर अपना लिया और महसूस किया कि पूरे मामले पर तवाज़ुन (सन्तुलन) के साथ निगाह डालने की ज़रूरत है।

जिस्म को ताक़त और नशो-नुमा के लिए और रोगों से लड़ने के लिए जितनी चीज़ों की ज़रूरत है उन्हें मुहैया करने में कोई हरज नहीं, बल्कि ऐसा करना ज़रूरी है। किसी भी धर्म या मज़हब में इस जाइज़ बात को नकारनेवाली कोई हिदायत नहीं मिलती। अल्लाह कहता है—

"ऐ पैग़म्बरो! खाओ पाक चीज़ें और अमल करो नेक।"

(क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, आयत-51)

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अगर तुम सचमुच अल्लाह की बन्दगी करनेवाले हो तो जो पाक चीज़ें हमने तुम्हें दी हैं उन्हें बेझिझक खाओ और अल्लाह का शुक्र अदा करो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-172)

नबी ने फ़रमाया है—

"जो चाहो खाओ-पहनो जब तक कि ये दोनों बातें न पैदा हों, बेजा ख़र्च और दिखावा और घमंड।" (हदीस : फ़तहुलबारी)

इसलिए जिस्म की दुश्मनी पर क़ायम रहबानियत (संन्यास) और उसकी ज़रूरतों और तफ़रीहों पर ज़ुल्म करनेवाला ख़ुदा के दीन का हिस्सा नहीं, बल्कि यह दीन में मिलावट करने और नई-नई बातें गढ़नेवालों का कारनामा है।

हाँ, एक हक़ीक़त और भी है जिसका अक़्लमन्द इनकार नहीं करते। वह यह कि कोई आदमी ख़ाहिशों के पीछे भागते रहकर हदों से आगे न बढ़े क्योंकि उसका अंजाम बुरा होता है और दीन (धर्म) ही नहीं, अक़्ल भी उसे

निरस्त कर देती है। साथ ही दूसरे लोगों की ज़रूरतों का ध्यान रखना भी ज़रूरी है क्योंकि ख़ुद पेट भरकर खाना और साथ के लोगों का भूखा रह जाना इनसानियत के ख़िलाफ़ है।

खाने-पीने वग़ैरह के बारे में आई हदीसों को हम इसी पसमंज़र (संदर्भ) में समझते हैं कि–

"खाओ-पियो और हद से आगे न बढ़ो, अल्लाह हद से आगे बढ़नेवालों को पसन्द नहीं करता।"

(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-31)

एक रिवायत में आता है कि हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि॰) एक मज़दूर पर लदवाकर गोश्त ले जा रहे थे कि हज़रत उमर (रज़ि॰) मिल गए। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने पूछा कि जाबिर! यह क्या है? उन्होंने कहा कि घरवालों के लिए एक दिरहम का गोश्त लिया है। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने कहा कि हममें से कोई यह नहीं करता कि अपना पेट अपने पड़ोसी और चचाज़ाद भाई के लिए लपेट ले। इस आयत पर निगाह नहीं पड़ती–

"तुम अपने हिस्से की नेमतें अपनी दुनिया की ज़िन्दगी में ख़त्म कर चुके और उनका मज़ा तुमने उठा लिया।"

(क़ुरआन, सूरा-46 अहक़ाफ़, आयत-20)

उस वक़्त मदीना के हालात ख़राब थे और उनका तक़ाज़ा था कि निहायत किफ़ायत-शिआरी और कमख़र्ची का रवैया अपना करके ज़रूरतमन्दों की निगहबानी की जाए। इस तरह के बुहरान (संकट) में परहेज़गारों की शान यही होनी चाहिए। हज़रत उमर (रज़ि॰) अल्लाह के बन्दों पर गोश्त हराम नहीं कर रहे थे, न यह कि उन्हें या किसी और को हक़ ही था।

एक रिवायत में आता है कि क़ियामत के दिन भारी-भरकम लम्बे और ख़ूब खाने-पीनेवाले आदमी को लाया जाएगा और उसका वज़न अल्लाह के नज़दीक मच्छर के पर के बराबर भी नहीं ठहरेगा।

इस बात को तफ़सील से समझने की ज़रूरत है। कुछ लोग दुनियावाली ज़िन्दगी के ग़ुलाम होते हैं, इसके बाद क्या है उसकी परवाह भी नहीं करते, न उन्हें हिसाब और सज़ा का डर होता है। क़ुरआन में है–

"वह अपने घरवालों में मग्न था। उसने समझा था कि उसे कभी पलटना नहीं है। पलटना कैसे न था, उसका रब उसके करतूत देख रहा था।"

(क़ुरआन, सूरा-84 इनशिक़ाक़, आयतें-13 से 15)

ईमान से ऐसे महरूम (वंचित) लोगों और उन ईमानवालों की ज़िन्दगी के बीच ख़ल्त-मल्त (गड्ड-मड्ड) नहीं करना चाहिए जो ज़िन्दा रहने के लिए खाते-पीते, जिद्दो-जुहद करने के लिए तृप्त होते और बुराइयों से रोकनेवाली पाकीज़ा चीज़ों से मज़ा उठाते हैं और हर सूरत में अल्लाह तआला की हदों का लिहाज़ रखते हैं।

मुसलमानों के समाज में लज़्ज़त-परस्तियों और अलग-अलग मौक़ों पर की जानेवाली दावतों में फ़ालतू ख़र्चों में सुधार करने की ज़रूरत है, क्योंकि जो लोग नाम-नुमूद और दिखावे में आगे बढ़ जाने के लिए दावतें करते हैं उनकी दावतें क़बूल करने तक की मनाही है।

खाने-पीने के बारे में बहुत-सी हदीसें आई हैं। कुछ सही हैं, कुछ ग़लत और कुछ अरबवालों की आदतों के बारे में हैं। यह कहना कि खाने के लिए छुरी का इस्तेमाल हराम है, सही नहीं है। क्योंकि सही हदीस से साबित है कि नबी (सल्ल॰) खाते वक़्त गोश्त को काटने के लिए छुरी इस्तेमाल करते थे।

इसी तरह ज़मीन पर बैठकर खाने का हुक्म नहीं दिया गया और मेज़ पर खाने से मना नहीं किया गया है। इसलिए जिस बात से शरीअत देनेवाले ने ख़ामोशी अपनाई है वह दरगुज़र के दायरे में है, न तो उसमें वाजिब होने का हुक्म है और न ही हराम होने का। खाना ज़मीन और मेज़ दोनों पर जाइज़ है। खाने के दौरान कुर्सी पर बैठना भी जाइज़ है। इसी तरह अकेले भी खाया जा सकता है और लोगों के साथ एक बरतन में शरीक होकर भी।

हाँ, अलबत्ता खाते वक़्त "बिसमिल्लाह" पढ़ना ज़रूरी है। नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है, "अल्लाह का नाम लो, दाहिने हाथ से खाओ और अपने सामने से खाओ।" (हदीस : बुख़ारी व मुस्लिम)

इनसान को इस बात की भी पूरी आज़ादी है कि चाहे वह अपने दाहिने हाथ से खाए या चम्मच से खाए। इस बारे में पूरी-पूरी गुंजाइश है। अरब

के लोग आदत के मुताबिक़ हाथ ही से खाते थे। हाथ से खानेवाला आदमी यक़ीनी तौर पर उँगलियों को चाटेगा भी। लेकिन इस आदत को दीन का लाज़मी हिस्सा बना देना बेबुनियाद बात है। दीने-इस्लाम की बात तो यह है कि प्लेट में कम या ज़्यादा खाना यूँ ही न छोड़ दिया जाए कि बाद में वह कूड़ेदान में फेंक दिया जाए। यह मज़म्मत (निन्दा) के लायक़ बात है।

अजीब बात तो यह है कि यूरोप के लोग अपनी प्लेटों को बड़ी हद तक साफ़ करके उठते हैं जब कि अरब के लोग अपनी प्लेटों में बहुत सारा खाना छोड़ देते हैं जो आख़िरकार कूड़ेदान में पहुँच जाता है और फिर इस फ़ुज़ूलख़र्ची पर शैतान बग़लें बजाता है।

इमाम मावर्दी (रह०) लिखते हैं—

> "खाने-पीने का तक़ाज़ा या तो शदीद ज़रूरत की वजह से होता है या दिल की ख़ाहिश से। ज़रूरत तो इतना माँगती है जिससे भूख-प्यास मिट जाए और अक़्ली और शरई तौर पर ऐसा करना पसन्दीदा है, क्योंकि इससे जिस्म की हिफ़ाज़त होती है। इसी-लिए शरीअत ने लगातार (नफ़्ली) रोज़े रखने से भी मना किया है, क्योंकि इससे जिस्म कमज़ोर होता है, दिल मुर्दा होता है और इबादत करने में अड़चन पैदा होती है, और यह सब शरीअत में मना है और अक़्ली तौर पर भी नापसन्दीदा है।"
>
> जिस्म को उसकी ज़रूरत से महरूम (वंचित) करना न नेकी है, न परहेज़गारी। क्योंकि इसकी वजह से इबादत और इताअत से महरूमी पैदा होगी, जिसका सवाब कहीं ज़्यादा है, जबकि मबाह (जाइज़ व हलाल) छोड़ने में इबादत व इताअत-गुज़ारी से ज़्यादा सवाब नहीं, फिर यह कितनी नादानी की बात होगी कि बदन को उसकी ज़रूरत से भी महरूम रखा जाए और अज्र और सवाब से भी। इस तरह तो भलाई के शौक़ से ज़्यादा दिखावे और शोहरत का शौक़ ही पूरा हो सकता है।"

खाने-पीने का शौक़ दो तरह का होता है। ज़्यादा खाने और तरह-तरह के लज़ीज़ (स्वादिष्ट) खानों का। ज़रूरत से ज़्यादा खाना शरई और अक़्ली

तौर पर नापसन्दीदा है।

एक रिवायत के मुताबिक़ अल्लाह के नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं—

"हद से ज़्यादा पेट भर लेना दीन के लिए तबाह करनेवाला है, बीमारी भी लाता है और इबादतगुज़ारी के सिलसिले में भी सुस्ती में मुब्तला करता है।"

हज़रत अली (रज़ि॰) का क़ौल है कि अगर तुम हद से ज़्यादा पेट भरकर खाते हो तो अपने को मरीज़ और निकम्मा समझो।

किसी अक़्लमन्द का क़ौल (कथन) है कि बेहतरीन दवा यह है कि खाना (महदूद मिक़दार) सीमित मात्रा में लिया जाए, रहा क़िस्म-क़िस्म के मज़ेदार खानों का शौक़ तो कुछ लोग तो यह राए रखते हैं कि नफ़्स को ज़बरदस्ती उनसे रोकना चाहिए, क्योंकि इस तरह के शौक़ की कोई इन्तिहा (अन्तिम सीमा) नहीं होती और इनसान उनका ग़ुलाम होकर रह जाता है। इमाम अबू-हज़्म (रह॰) के बारे में कहा जाता है कि जब उनका गुज़र ऐसे फलों के पास से होता जिनका दिल ख़ाहिश करता तो वे यह कहकर आगे बढ़ जाते कि इस (शौक़) की जगह जन्नत है, वहीं खा लेंगे।

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि यह शौक़ पूरा कर देने से दिल में जमाव पैदा हो जाता है, लेकिन दूसरे लोगों का ख़याल है कि इस तरह का हर शौक़ नहीं पूरा करना चाहिए, कभी कोई शौक़ पूरा भी कर दे और कभी रोक भी दे। और यही बीच का रास्ता ज़्यादा पसन्दीदा है और सलामती के ज़्यादा क़रीब है।

लिबास

खाने-पीने ही की तरह इनसान को लिबास की भी ज़रूरत होती है, जिससे जिस्म की हिफ़ाज़त, सत्रपोशी (ज़रूरी हिस्सों का छिपाना) और ज़ीनत (शोभा) हासिल हो सके।

अल्लाह तआला का फ़रमान है—

"ऐ आदम की औलाद! हमने तुमपर ऐसा लिबास उतारा है जो तुम्हारी सत्रपोशी करे और ज़ीनत (शोभा) हो, और तक़्वा का

लिबास ही बेहतर है।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-26)

अब्दुर्रहमान-बिन-ज़ैद का क़ौल है कि इस आयत में अरबी शब्द 'रीशा' से मुराद ज़ीनत और जमाल (सुन्दरता और शोभा) है।

इसी तरह तक़्वा के लिबास से मुराद हज़रत उसमान (रज़ि॰) के नज़दीक अच्छी साख है।

ज़ीनत और ख़ूबसूरती स्वाभाविक तौर पर पसन्दीदा चीज़ है, इसमें ऊँच-नीच की इन्तिहाओं के बजाए एतिदाल (सन्तुलन) से काम लेना चाहिए। हर इलाक़े के लोगों के पसन्दीदा लिबास अलग-अलग होते हैं, उनका ख़याल और लिहाज़ भी अच्छी चीज़ है। इसी तरह हैसियत से ज़्यादा क़ीमती लिबास लेना ग़ैर-ज़रूरी तकल्लुफ़ है। हज़रत उमर (रज़ि॰) कहते हैं कि दो लिबासों से परहेज़ करो, शोहरत की चाहत का लिबास और ज़लील (रुसवा) करनेवाला लिबास।

बहरहाल इस सिलसिले में भी एतिदाल की राह (सन्तुलित मार्ग) पर चलना ही मुनासिब है। फिर यह कि लिबास से कहीं ज़्यादा नफ़्स को सवाँरने की ज़रूरत है।

इस्लाम सही-सलामत फ़ितरत का मज़हब है और हर वह चीज़ जो जिस्म को ख़ुशगवार बनाए उसी की ज़रूरत हैं।

दीन के बारे में बहुत सारे मसले ग़लत नतीजे निकालने यानी नासमझी और ग़लतफ़हमी में पैदा होते हैं।

इस्लाम लिबास के सिलसिले में भी एतिदाल (सन्तुलन) की हिदायत देता है। वह इसे पसन्द नहीं करता कि इनसान ऐसे लिबास पहने जिनपर उसे फ़ख़्र और घमंड महसूस हो या दूसरों को दिखाना और जताना मक़सद हो। इस्लाम बेहतरीन शक्ल और ज़ाहिरी बनावट को मर्दानगी या ऊँचे किरदार की अस्ल बुनियाद नहीं मानता। ऐसा भी होता है कि ऐसा आदमी जिसके कपड़े कुछ रुपये की क़ीमत के भी नहीं होते लेकिन बड़े-बड़े मालदारों से कहीं ज़्यादा वज़नदार और क़ाबिले-क़द्र किरदारवाला होता है।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं कि "बहुत-से परागन्दा हाल, फटे-पुराने कपड़ोंवाले ऐसे होते हैं कि अगर ख़ुदा की क़सम खा लें तो ख़ुदा

उसे पूरी कर देता है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

यह बेवकूफ़ी ही होगी कि नौजवान अपने बदन को फ़ैशन की नुमाइशगाह बनाकर लोगों के बीच चले और हर तरफ़ दाद और वाहवाही पाने के लिए निगाह उठाए। कितने ही धोखे में पड़े नौजवान ऐसे हैं जो अपने घरों में कई-कई घंटो तक अपने-आपको सजाने-सवाँरने में और ख़ूबसूरत दिखने की कोशिश में लगे रहते हैं। अगर इतना वक़्त वे इल्म हासिल करने में और समझ-बूझ पैदा करने में लगाते तो कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाते, लेकिन वे तो जिस्मानी बनाव-सिंगार और सजावट ही को कमाल समझ बैठे हैं।

इस्लाम इस धोखे में पड़ने की मज़म्मत (निन्दा) करता है और मुसलमानों को इससे नफ़रत दिलाता है। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "जिसने दुनिया में शोहरतवाला लिबास पहना, अल्लाह तआला उसे क़ियामत के दिन ज़िल्लत (रुसवाई) का लिबास पहना देगा और उसमें आग भड़का देगा।" (हदीस : इब्ने-माजा)

सच्ची बात यह है कि धोखे-फ़रेब में पड़े मर्द और औरत जब इल्म व अदब (तहज़ीब) हासिल करने में कोताही करते हैं तो समझते हैं कि लिबास और सज-धज में बढ़ावा करके उस कोताही की परदापोशी हो जाएगी जो मुमकिन नहीं है।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैं हज़रत आइशा (रज़ि॰) के पास हाज़िर हुआ तो उन्होंने हम लोगों को एक पैवन्द लगी चादर और एक यमन का बना हुआ ईज़ार (पाजामा) निकालकर दिखलाया और ख़ुदा की क़सम खाकर बताया कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का इन्तिक़ाल इन्हीं कपड़ों में हुआ था। (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत जाबिर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि हम हज़रत अली (रज़ि॰) और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) की शादी में शरीक थे। उससे बेहतर शादी हमने नहीं देखी। हमने पत्ते भरकर बिस्तर का गद्दा तैयार किया था और ख़जूर और किशमिश से हमारी मेहमाननवाज़ी की गई थी। शादी की रात में हज़रत

फ़ातिमा (रज़ि॰) का बिस्तर एक मेंढ़े की खाल थी। (हदीस : बज़्ज़ार)

फ़ुज़ूल की चीज़ों से बेपरवाही और ज़रूरी चीज़ों पर सब्र करना और काफ़ी समझना किरदार के कमाल की निशानियों में से है।

लेकिन इससे यह नतीजा नहीं निकलता कि दीन ख़राब लिबास और नापसन्दीदा शक्ल व हुलिए को पसन्द करता है और फटे-पुराने और पैवन्द लगे हुए कपड़े पहनने के लिए उभारता है जैसा कि जाहिल इबादतगुज़ार करते हैं। ऐसा हरगिज़ नहीं।

एक आदमी ने हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) से पूछा कि कौन-सा लिबास पहनूँ? उन्होंने जवाब में कहा, "जो तुम्हारा शुमार नासमझों में न कराए और जिसे अक़्लवाले बुरा न समझें।" उसने पूछा— यानी कितनी क़ीमत का? कहा कि पाँच दिरहम से बीस दिरहम के बीच की क़ीमत का। यह क़ीमत हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) के ज़माने में मुनासिब थी। आज हमारे ज़माने में ज़्यादा भी हो सकती है।

एक आदमी नबी (सल्ल॰) के पास आया। वह घटिया कपड़े पहने हुआ था। आप (सल्ल॰) ने पूछा कि तुम्हारे पास माल है? उसने कहा, हाँ। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "कौन-सा माल है? उसने कहा, अल्लाह ने मुझे हर क़िस्म का माल दे रखा है। तब नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "जब अल्लाह तआला ने तुम्हें माल दे रखा है तो उसकी नेमत और इज़्ज़त का असर तुमपर नज़र आना चाहिए।"
>
> (हदीस : नसई)

आप (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया, "इसमें कोई हरज नहीं कि अगर किसी आदमी के पास गुंजाइश हो तो वह अपने (रोज़मर्रा के) काम के कपड़ों के अलावा दो कपड़े जुमा के दिन के लिए ख़ास तौर पर रख ले।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इस्लाम—जैसा कि आपने देखा—अपने माननेवालों को अच्छी शक्ल-सूरत में और ख़ूबसूरत देखना चाहता है। एक इनसान अपने ज़ाहिर को ख़ूब सँवारे और अन्दरून को नज़र-अन्दाज़ किए रहे और अपने वक़्त और माल का बेहतरीन हिस्सा सिर्फ़ अपने बदन की साज-सज्जा और सजावट में लगाए,

दूसरी तरफ़ एक इनसान को सबसे ज़्यादा फ़िक्र अपनी हक़ीक़त की हिफ़ाज़त और अपने किरदार के कमाल की रहे फिर वह फ़र्ज़ों की अदाइगी के साथ अच्छे लिबास में लोगों से मिले भी, तो दोनों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है।

आज दुनिया में हर मौसम और हर तक़रीब व समारोह के मौक़े पर पहनने के लिए अलग-अलग फ़ैशन के लिबासों का चलन हो रहा है। बहार के मौसम के लिबास अलग होते हैं, पतझड़ के मौसम के लिबास अलग, सरदी-गर्मी के मौसमों के लिबास अलग-अलग, बल्कि सुबह के अलग, शाम के अलग होते हैं। इस तरह की बेकार की चीज़ों से परहेज़गार लोगों का कोई ताल्लुक़ नहीं हो सकता।

अल्लाह के नबी (सल्ल०) फ़रमाते हैं, "सोने और रेशम से औरतों की बरबादी हो।" (हदीस : इब्ने-हिब्बान)

यह तंबीह उन औरतों के लिए है जो ज़ेवरात को हद से ज़्यादा पसन्द करती हैं और तरह-तरह के लिबासों और रंग-रूपों में मसरूफ़ होकर अहम हुक़ूक़ की अदाइगी से ग़ाफ़िल रह जाती हैं।

इस्लामी तालीमात के मुताबिक़ सोना और रेशम सिर्फ़ मर्दों पर हराम हैं, दूसरे कपड़ों में उनके लिए काफ़ी गुंजाइश मौजूद है। सजना-धजना, ज़ीनत, नाम और नुमाइश मर्दों के लिए मुनासिब नहीं है। औरतों के लिए सोना और रेशम हलाल हैं, लेकिन सजने-धजने और फ़ैशन को उन्हें हर वक़्त का ओढ़ना-बिछौना बनाकर दौलत बरबाद नहीं करनी चाहिए।

मकान

इस्लाम इससे मना नहीं करता कि मज़बूत पनाहगाहें और स्कूलों, यूनिवर्सिटियों और अस्पतालों वग़ैरा के लिए शानदार और ऊँची-ऊँची इमारतें बनाई जाएँ और उनमें काफ़ी रक़म लगाई जाए (क्योंकि ये इमारतें जनता के आम फ़ायदे के लिए होती हैं और नस्ल-दर-नस्ल काम आती हैं। लेकिन किसी को अपने निजी इस्तेमाल के लिए हद से ज़्यादा ऊँचे और शानदार बड़े-बड़े महल बनाने की क्या ज़रूरत हो सकती है? इस्लाम तो घरों

के बनाने और उनमें साज़ो-सामान को मुहैया करने में सादगी को पसन्द करता है और उनपर होनेवाले ख़र्चों में तकलीफ़ उठाने और बढ़ा-चढ़ाकर दिखावे से काम लेने से बचे रहने की हिदायत करता है।

हज़रत ख़ब्बाब-बिन-अरत (रज़ि॰) का बयान है–

"मुसलमान जिस चीज़ में भी ख़र्च करता है उसे अज्र (नेक बदला) मिलता है सिवाए इसके जो वह उस मिट्टी (यानी इमारत) में लगाता है।" (हदीस : बुख़ारी)

मोहतरम सहाबी (रज़ि॰) ने यह बात उस वक़्त फ़रमाई जब वे अपनी एक दीवार बना रहे थे, लेकिन अल्लाह की राह में ख़र्च करने की ज़रूरत के ताल्लुक़ से अपने बहुत ज़्यादा एहसास की वजह से ऐसा महसूस कर रहे थे कि इमारत बनाने में कोई अज्र नहीं मिलेगा।

ज़ाहिर है अगर आख़िरत को भुला करके दुनिया में घमंड और बड़ाई जताने के लिए इमारत बनाई जाए तो अज्र (बदला) नहीं मिलेगा, लेकिन अपनी हिफ़ाज़त और रहने के लिए जो इमारत बनाई जाए उसमें अज्र ज़रूर मिलेगा, बल्कि यह भी इबादत ही होगी।

घर के साज़ो-सामान और फ़रनीचर के सिलसिले में भी इस्लाम ने फ़ुज़ूलख़र्ची और ज़रूरत से ज़्यादा सजाने-सवाँरने को नापसन्द ठहराया है।

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने हज़रत मुआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) को यमन भेजते हुए फ़रमाया था–

"ज़्यादा आराम-तलबी और ऐशो-आराम से बचना, क्योंकि अल्लाह के बन्दे आराम-तलब और ऐश-पसन्द नहीं होते।"

(हदीस : अहमद)

इसी लिए इस्लाम ने सोने-चाँदी के बरतन और प्रचलित रेशम और दीबाज के फ़र्श बनाने-बिछाने को हराम क़रार दिया है। लोगों के लिए इतना काफ़ी है कि उनके बरतन, फ़र्श और बिछौने आम चीज़ों के हों।

हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने मना किया है कि हम सोने-चाँदी के बरतनों में खाएँ-पिएँ और रेशम-दीबा के कपड़े पहनें या उनपर बैठें। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

कोई समझ सकता है कि सादगी और ख़ुरदरापन इस्लामी ज़िन्दगी की पहचान है। अगर ऐसा समझना सही भी हो तो क्या बुराई है? लेकिन यह अजीब बात होगी कि ज़िन्दगी की नर्मी को रेशम और सोने के इस्तेमाल के साथ जोड़ दिया जाए। इनसान तो सोना और रेशम पहने बग़ैर भी बेहतर तरीक़े से ज़िन्दगी गुज़ार सकते हैं।

हाँ, इस्लाम यह ज़रूर चाहता है कि इनसान की इनफ़िरादी (निजी) और इज्तिमाई (सामूहिक) रोज़ी से फ़ुज़ूलख़र्ची को निकालकर बाहर कर दे। मुस्लिम उम्मत को तो अपनी ज़िन्दगी सिपाही की ज़िन्दगी बनानी चाहिए, ताकि वह हक़ की हिमायत में हमेशा जिद्दो-जुहद (संघर्ष, अथक प्रयास करने) के लिए तैयार रहे और दुनिया के फ़ितने और खेल-तमाशों से बचकर रहे। हराम चीज़ों और लज़्ज़त-परस्तियों में डूबना संजीदगी और ज़िम्मेदारियों से दूर भागना है। ये आदतें जिस क़ौम में पैदा होंगी उसे तबाह व बरबाद कर देंगी।

अल्लाह के नबी (सल्ल०) फ़रमाते हैं—

> "मेरी उम्मत में अनक़रीब कुछ लोग ऐसे होंगे जो तरह-तरह के खाने खाएँगे, तरह-तरह के शरबत और दूसरी पीने की चीज़ें पीएँगे, रंग-बिरंगे लिबास पहनेंगे और चबा-चबाकर बातें करेंगे। ये मेरी उम्मत के बदतरीन लोग होंगे।" (हदीस : तबरानी)

आप यह ख़ूबी उन लोगों में पाएँगे जिनको दीन विरासत में सिर्फ़ बात ही बात के तौर पर मिला है और उसे उन्होंने खेल-तमाशे की चीज़ बना लिया है। वे ख़ुद भी दुनिया में तबाह हुए और उनके बीच लोगों के हक़ भी बरबाद हो गए।

अल्लाह तआला ने लज़्ज़त-परस्तियों में डूब जानेवाले और ऐशो-आराम और खेल-तमाशों में मगन रहनेवाले और दुनिया की मामूली ख़ाहिशों और बदन के ज़लील तक़ाज़ों को पूरा करने ही में मस्त रहनेवाले लोगों को तंबीह फ़रमाई है। कहा—

> "फिर जब ये हक़ के इनकारी आग के सामने ला खड़े किए जाएँगे तो उनसे कहा जाएगा कि तुम अपने हिस्से की नेमतें

अपनी दुनिया की ज़िन्दगी में ख़त्म कर चुके और उनका मज़ा उठा लिया, अब जो घमंड तुम ज़मीन में किसी हक़ के बग़ैर करते रहे और जो नाफ़रमानियाँ तुमने कीं उनके बदले में आज तुमको ज़िल्लत का अज़ाब दिया जाएगा।"

(क़ुरआन, सूरा-46 अहक़ाफ़, आयत-20)

जब वे अपनी सज़ा पाने को पहुँचेंगे तब याद आएगा कि पाकीज़गी और दरमियाना रवैया छोड़कर गुमराही और मस्ती में पड़ने की वजह से ऐसा हुआ है। क़ुरआन में है—

"यह तुम्हारा अंजाम इसलिए हुआ है कि तुम ज़मीन में ग़ैर-हक़ पर मगन थे और उसपर इतराते थे।"

(क़ुरआन, सूरा-40 मोमिन, आयत-75)

सच्चाई यह है कि मुस्लिम मिल्लत में आज जो ऐब और ख़लल नज़र आते हैं वे बड़ी हद तक पाकीज़गी को छोड़ने और लज़्ज़त-परस्तियों के फैलाने की वजह से हैं। अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) ने अपनी उम्मत को इस ज़वाल और गिरावट से आगाह किया था। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मुझे तुम्हारे बारे में तुम्हारे पेटों और शर्मगाहों (गुप्तांगों) से मुताल्लिक़ गुमराह करनेवाली ख़ाहिशों और बेराह चाल-चलनों से अन्देशा है।" (हदीस : अहमद)

इस्लाम का आगाज़ (आरंभ) तंग-दस्त लोगों में हुआ था, जिन्हें ज़रूरी जाइज़ और हलाल चीज़ें भी कम ही मिल पाती थीं, कहाँ यह कि वे जी भरकर चीज़ों से मज़े उठा सकें। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत है कि मैंने सत्तर अहले-सुफ़्फ़ा (चबूतरेवालों) (रज़ि०) को देखा है, किसी पर पूरा लिबास नहीं होता था, या तो इज़ार होता था या चादर जिसे वे गर्दन से बाँध लेते थे। कोई आधी पिंडुलियों तक पहुँच पाती थी और कोई टख़नों तक और वह उसे हाथ से पकड़े रहता था कि कहीं शर्मगाह न दिखाई दे जाए।

(हदीस : बुख़ारी)

भूख और ग़रीबी बहुत दर्दनाक मुसीबत है। इस आज़माइश से छुटकारा हासिल करना लोगों का हक़ है। इस्लाम ख़ुद ईमानवालों का यह हक़ क़रार

देता है कि वे दुनिया की ज़रूरी चीज़ें हासिल करें। अल्लाह के नबी (सल्ल०) को अन्देशा रहता था कि जब इस्लाम का ग़लबा हो जाएगा तो कहीं इस शदीद महरूमी (वंचित रहने) का रद्दे-अमल (प्रतिक्रिया) न पैदा हो जाए। इसी लिए आप (सल्ल०) साफ़ तौर पर फ़रमाया करते थे कि दुनिया की ज़रूरतों से महरूमी यक़ीनन बुरी चीज़ है लेकिन दुनियावी माल-दौलत और सामान के फ़ितनों में मुब्तला हो जाना इससे बड़ी बुराई है।

बेहतर रास्ता मयानारवी (सन्तुलित मार्ग) है यानी यह कि ज़िन्दगी में ख़र्च करने की सलाहियत इसलिए हासिल हो कि इनसान बेहतरीन नमूने तक पहुँच सके, यह नहीं कि दुनिया इनसान को अपनी लज़्ज़तों में फँसाकर हसरतनाक अंजाम तक पहुँचा दे।

नबी (सल्ल०) का मतलब यही था जब आप (सल्ल०) ने यह फ़रमाया—

> "ख़ुदा की क़सम मुझे तुम्हारे ऊपर फ़क़्र व फ़ाक़े (भूख और ग़रीबी) का डर नहीं है, बल्कि डर यह है कि दुनिया तुम्हारे लिए कुशादा कर दी जाए, जैसे तुमसे पहले के लोगों पर कुशादा कर दी गई थी; तब तुम भी उसी तरह आपस में मुक़ाबला करने लगो जैसे उन लोगों ने किया था और तुम भी उन्हीं की तरह हलाक और बरबाद हो जाओ।" (हदीस : बुख़ारी)
>
> "अच्छी हैयत (हुलिया) और मयानारवी (दरमियाना तरीक़ा) पैग़म्बरी के चौबीस हिस्सों में से एक हिस्सा है।"
>
> (हदीस : तिरमिज़ी)

संन्यास और फ़क़ीरी

संन्यास और दुनिया से बेरग़बती को ग़लत राह में ले जाना भी निन्दनीय है। मैंने एक वाइज़ (उपदेशक) को क़ुरआन की सूरा-102 'अत-तकासुर' की तफ़सीर (व्याख्या) बयान करते हुए सुना। वह लोगों को दुनिया से बेरग़बती की नसीहत कर रहा था। मुझे ख़याल आया कि हम लोगों ने इस बात को कितना ग़लत समझ रखा है। यह सूरा ज़िन्दगी के बुरे पहलू की बहुत बारीकी से तस्वीर बनाकर पेश करती है। आज दुनिया की चीज़ें जमा करने

की एक पागलपनवाली दौड़ जारी है जिसने माल-दौलत के सही इस्तेमाल से लोगों को धोखे में डाल कर रखा है, और यक़ीनन यह मज़म्मत के क़ाबिल है। क्योंकि यह दुनिया की परस्तिश और दुनिया से परे चीज़ों से ग़फ़लत की नुमाइन्दगी करती है। लेकिन माल-दौलत के बारे में अल्लाह यह भी फ़रमाता है–

> "और अपने वे माल, जिन्हें अल्लाह ने तुम्हारे लिए ज़िन्दगी बनाने का ज़रिआ बनाया है, नादान लोगों के हवाले न करो, हाँ, उन्हें खाने और पीने के लिए दो और उन्हें नेक हिदायत करो।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-5)

माल-दौलत हासिल करना और उनको बढ़ाना भी अच्छी बात है। इससे सच्चा मुसलमान अपनी ज़िम्मेदारियों से ग़ाफ़िल नहीं होता, बल्कि उनको पूरा करने में मदद हासिल करता है। इस आयत का मक़सद लोगों को आख़िरत की तरफ़ ध्यान दिलाना है, दुनिया से ग़ाफ़िल करना नहीं। ग़रीबी और लाचारी से न इस्लाम की कोई ख़िदमत हो सकती है और न उसे ताक़त मिल सकती है और न ही उसकी शिक्षाओं को बढ़ावा मिल सकता है।

हाँ, माल-दौलत को गुमराही, सरकशी, घमंड व इतराना, कंजूसी और बिगाड़ का ज़रिआ नहीं बनने देना चाहिए। बल्कि इसे दीन के मक़सद की ख़िदमत के लिए हासिल करना चाहिए।

दौलत का फ़ितना भी नफ़रत के लायक़ है और तंगी व लाचारी का फ़ितना भी। कभी मालदार सरकशी और नाफ़रमानी अपना लेता है और फ़क़ीर लाचारी और ज़िल्लत, लेकिन ईमानवाला न सरकश और नाफ़रमान बनता है और न ज़िल्लत अपनाता है। बहुत-से मालदार शुक्रगुज़ार और बहुत-से ग़रीब इज़्ज़त और ख़ुद्दारी (आत्म सम्मान) से ज़िन्दगी गुज़ारनेवाले भी होते हैं।

आख़िर मुसलमानों को इससे क्या फ़ायदा हो सकता है कि वे दुनिया छोड़कर वैरागी हो जाएँ और दूसरे उसपर क़ब्ज़ा कर लें। इस तरह की सोच से मिल्लत का कारवाँ कैसे आगे बढ़ सकता है, जब यह समझाया जाने लगे कि उसमान और अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि॰) जैसे मालदार भी, जिन्होंने अपनी दौलत इस्लाम की ख़िदमत के लिए वक़्फ़ कर रखी थी, जन्नत में

बग़ैर दौलतवाले लोगों से बहुत बाद में दाख़िल होंगे।

इब्ने-कसीर ने अपनी तफ़सीर में एक अजीबो-ग़रीब इसराइली हिकायत लिखी है। दो आदमी एक कारोबार में साझीदार थे जिसकी कुल पूँजी आठ हज़ार दिरहम थी। एक साझीदार नेक और दूसरा बदकार था। बदकार हुनरमन्द और नेक आदमी बेहुनर था। इसलिए बदकार ने तंग आकर वह कम्पनी ख़त्म कर दी। (हम पूछते हैं कि नेक आदमी हुनरमन्द क्यों नहीं था जबकि हदीस में आता है कि अल्लाह तआला हुनरमन्द मोमिन को पसन्द करता है?) दोनों साझीदार अपना-अपना हिस्सा लेकर अलग हो गए।

बदकार आदमी ने एक हज़ार दीनार से अपने लिए एक घर ख़रीदा। नेक आदमी ने एक हज़ार सदक़ा (दान) कर दिया ताकि उसे जन्नत में घर मिल जाए। (हम पूछते हैं कि आख़िर नेक आदमी का दुनिया में घर क्यों न हो?) फिर बदकार आदमी ने एक हज़ार दीनार से शादी कर ली और नेक आदमी ने एक हज़ार दीनार सदक़ा कर दिया, ताकि उसे जन्नत में हूर मिले। (हम पूछते हैं कि इसी नेक आदमी ने दुनिया में किसी औरत से शादी करके दोनों को गुनाह से बचाने का सामान क्यों नहीं मुहैया किया और उस बीवी पर ख़र्च करके बेशुमार नेकियाँ क्यों नहीं कमाईं?) फिर बदकार आदमी ने बाक़ी दो हज़ार दीनार से बाग़ ख़रीद लिए जबकि नेक आदमी ने अपने बाक़ी दो हज़ार दीनार भी सदक़ा कर दिए और फ़क़ीर व बेचारा बनकर रह गया।

इस तरह की मंतिक़ (तर्क) ज़िन्दगी के लिए तबाही का सबब है। मेरा मक़सद ज़िन्दगी की ख़ूबसूरती का क़सीदा पढ़ना नहीं, क्योंकि मैं मुसलमान की हैसियत से जानता हूँ कि हमारी जानें और हमारे माल सब अल्लाह के लिए हैं और आज दुनिया की क़ौमें हमपर इसी लिए ग़ालिब (हावी) हो रही हैं कि हममें दुनिया की मुहब्बत और मौत से नफ़रत पैदा हो गई है।

मैं सिर्फ़ यह बताना चाहता हूँ कि जिस तरह अल्लाह की राह में मौत जिहाद है, उसी तरह अल्लाह तआला के बताए हुए रास्ते में ज़िन्दगी गुज़ारना भी जिहाद है। दुनिया कमाने में नाकामी दीन की मदद करने में नाकामी का सबब बनती है। जिसके पास माल होगा वही तो ख़र्च कर सकेगा। इसी लिए तो पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) ने कहा है कि ताक़तवर

मोमिन कमज़ोर मोमिन से बेहतर है।

- नकारात्मक सोच से कोई फ़ायदा नहीं हो सकता। ख़ुदा कहता है—

  "अगर कभी हम इनसान को अपनी रहमत से नवाज़ने के बाद फिर उससे महरूम (वंचित) कर देते हैं तो वह मायूस होता है और नाशुक्री करने लगता है, और अगर उस मुसीबत के बाद जो उसपर आई थी, हम उसे नेमत का मज़ा चखाते हैं तो कहता है कि मेरे तो सारे दलिद्दर दूर हो गए, फिर वह फूला नहीं समाता और अकड़ने लगता है। इस ऐब से पाक अगर कोई हैं तो बस वे लोग जो सब्र करनेवाले और नेकी करनेवाले हैं, और वही हैं जिनके लिए दरगुज़र भी है और बड़ा अज्र (बदला) भी।" (क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-9 से 11)

इन आयतों से पता चलता है कि इनसान ख़ुशहाली और तंगदस्ती में अकड़ या मायूसी का शिकार हो जाता है जबकि उसे दोनों हालतों में अपने दिल पर क़ाबू रखना चाहिए और अपने किरदार को नहीं भूलना चाहिए, और मोमिन की यही ज़िम्मेदारी है। इसी के साथ वह यह भी महसूस करता है कि उसे जो ख़ुशहाली अल्लाह ने दी है वह सिर्फ़ उसी के लिए नहीं है, बल्कि उसमें लोगों का भी हक़ है जो ज़रूरतमन्द और परेशानहाल हैं।

सोच-विचार करने पर यह सच्चाई खुलकर सामने आ जाती है कि फ़क़ीरी और वैरागीपन की कुछ हदीसें उनसे ज़्यादा सही सनद (प्रमाणित) और मतूनवाली हदीसों के बरख़िलाफ़ होती हैं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वे उन क़ुरआन की आयतों से भी टकराती हैं जिनमें ईमान की हिफ़ाज़त के लिए जिहाद को एक शोबा (विभाग) क़रार दिया गया है। मगर इसके बावजूद उन हदीसों को इतना ज़्यादा फैलाया गया कि आज इस उम्मत के लोगों की बड़ी भारी तादाद उनसे मुतास्सिर है।

मैंने पचास हदीसें ऐसी पढ़ी हैं जो मुहताजी और ग़रीबी पर उभारती हैं और फ़क़ीरों, मिस्कीनों और समाज के कमज़ोर लोगों से मुहब्बत और उनकी संगत की बड़ाई के बारे में है। इनके अलावा सत्तर हदीसें ऐसी पढ़ी हैं जो दुनिया का त्याग करने, संन्यास, कम-से-कम पर मुत्मइन रहने के लिए

उभारने के साथ दुनिया की मुहब्बत, दुनिया की ज़्यादा तलब और दुनिया-तलबी में आपस में आगे बढ़ने की मज़म्मत के बारे में है। इनके अलावा सत्तर ऐसी हैं जिनमें यह बताया गया है कि हमारे पूर्वजों ने किस क़द्र सादा और दुनिया से किनारा करके ज़िन्दगी बसर की है।

हदीस की मशहूर किताब "अत्तरग़ीब-वत्तरहीब" में अल्लामा मुंज़िरी (रह०) ने इन तमाम हदीसों को जमा कर दिया है। उन्होंने उम्मत की भलाई और कमाल दर्जे की नेक-नीयती के साथ इन हदीसों का ज़िक्र किया है, लेकिन सही फ़िक़्ह इससे कहीं ज़्यादा बेहतर मसलक और ज़िन्दगी के ढंग की तरफ़ रहनुमाई करती है।

इस सच्चाई से मैं भी बाख़बर हूँ और दूसरे लोग भी कि दुनिया की मुहब्बत ने पहले के लोगों को भी हलाक किया है और बाद के लोगों को भी, और यह कि यही बहुत-से रोंगटे खड़े कर देनेवाले जुर्मों के पीछे काम कर रही होती है, जिनमें अवाम से पहले ख़ास लोग, शासित से पहले शासक और बेवक़ूफ़ों से पहले अक़्लमन्द लोग मुब्तला होते हैं। लेकिन इस घिनावने मर्ज़ का सही इलाज इसकी ख़राबियों पर क़ाबू पाकर ही हो सकता है।

क़ारून से बड़ा ख़ज़ाना हासिल कर लीजिए और हज़रत सुलैमान (अलैहि०) की तरह बड़ा इक़्तिदार (शासन-सत्ता) क़ायम कर लीजिए, लेकिन उसे अपने क़ाबू में रखिए, ताकि ज़रूरत के वक़्त हक़ की मदद कर सकें और क़ुरबान करने का वक़्त आए तो उसे क़ुरबान कर सकें और मौत के वक़्त अल्लाह के हवाले कर दें। लेकिन ख़ुदा के लिए यह समझकर बदहाली की ज़िन्दगी न गुज़ारिए कि यह जन्नत का रास्ता है। यह एक पागलपन और बेअक़्ली की बात होगी। अगर नास्तिकता ज़मीन में पंजे गाड़कर अपनी बालादस्ती (सत्ता) क़ायम कर दे तो आपका दुनिया से भागना बड़ा भयानक जुर्म होगा। अब आइए इस सिलसिले में कुछ हदीसों पर भी नज़र डालते चलें, ताकि उनके पीछे की सच्चाई को समझ सकें।

हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) बयान करते हैं कि हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि०) के आख़िरी वक़्त में हज़रत सअद-बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ि०) उनकी इयादत (बीमारपुर्सी) के लिए गए। हज़रत सलमान फ़ारिसी (रज़ि०)

उस वक़्त रो रहे थे। हज़रत सअद (रज़ि॰) ने कहा, मेरे भाई आप क्यों रो रहे हैं? क्या आप नबी (सल्ल॰) के सहाबी नहीं हैं? हज़रत सलमान (रज़ि॰) ने जवाब दिया, न तो मैं दुनिया से मुहब्बत पर रो रहा हूँ और न ही आख़िरत से घबराकर रो रहा हूँ, लेकिन अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने हमसे एक वादा लिया था और मुझे लगता है कि मैं उस वादे से आगे बढ़ गया। हज़रत सअद (रज़ि॰) ने पूछा कि वह वादा क्या था? उन्होंने जवाब दिया कि नबी (सल्ल॰) ने वादा लिया था कि तुममें से हर एक के लिए मुसाफ़िर जैसा सफ़र का सामान काफ़ी है, और मेरे ख़याल से मैं उससे आगे निकल चुका हूँ, मेरे भाई सअद! फ़ैसले करते वक़्त अल्लाह से डरिए और क़सम खाते वक़्त अल्लाह से डरिए और इरादा करते वक़्त अल्लाह से डरिए।

इसके बाद मुंज़िरी लिखते हैं सहीह इब्ने-हिब्बान के मुताबिक़ हज़रत सलमान (रज़ि॰) के इन्तिक़ाल के बाद जब उनके माल को जमा किया गया तो कुल असासा (पूँजी) पन्द्रह दिरहम था।

सलमान फ़ारिसी (रज़ि॰) बहुत मशहूर सहाबी थे और इस हदीस के मुताबिक़ वे इसलिए रो रहे थे कि उनके पास पन्द्रह दिरहम का माल मौजूद था।

यह सूरते-हाल दिल में अल्लाह का ख़ौफ़ पैदा करती है कि इस्लामी फ़तह का एक क़ाइद (सरदार) इस क़द्र सादा, तक़्वा और परहेज़गारी की ज़िन्दगी गुज़ार रहा था, जबकि आजकल हमारे लीडर और अमीर इस क़द्र ऐश की ज़िन्दगी गुज़ारने के बावजूद मुत्मइन नहीं होते।

लेकिन फ़िक़्ह यहाँ पर एक सवाल पूछती है कि क्या हज़रत सअद (रज़ि॰) ने नबी (सल्ल॰) की यह हदीस नहीं सुनी थी, “अपने वारिसों को मालदार छोड़ना उन्हें मुहताज छोड़ने से बेहतर है कि वे लोगों के सामने माँगने के लिए हाथ फैलाते फिरें।” बड़ी मीरास छोड़ना कोई जुर्म नहीं।

सअद-बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ि॰) उन दस सहाबा में से है जिन्हें दुनिया ही में जन्नत की ख़ुशख़बरी दे दी गई थी और ये दसों सहाबा सब-के-सब मालदार थे, उनमें से कोई भी फ़क़ीर नहीं था। इसके अलावा हदीस बयान करनेवालों ने बयान किया है कि उनमें से एक सहाबी ने तो इतना सोना तर्के

में छोड़ा था कि उसे कुल्हाड़ी से काट-काटकर बाँटा गया था।

अस्ल मसला माल-दौलत की फ़रावानी और ज़्यादती का नहीं है, बल्कि यह है कि उसे कैसे हासिल किया जाए और कैसे ख़र्च किया जाए। इसी दुनिया में हमने बहुत-से मालदारों को देखा है जिन्होंने इल्म और जानकारी के लिए यूनिवर्सिटियाँ तामीर की हैं या जिन्होंने बीमारी और आफ़तों से मुक़ाबला किया है, और वे भी है जिन्होंने अपनी हुकूमतों को पूरा-पूरा टैक्स अदा किया है, ताकि वे आम लोगों के फ़ायदों के कामों में ख़र्च हो सकें। हमने हज़रत उसमान ग़नी (रज़ि॰) को देखा जिन्होंने इन्तिहाई मुश्किल हालात में की जानेवाली तबूक की जंग में इस क़द्र दिल खोलकर हिस्सा लिया कि नबी (सल्ल॰) ने उनके लिए दुआ फ़रमाई कि ऐ अल्लाह! तू उसमान से राज़ी हो, क्योंकि मैं उसमान से राज़ी हूँ।

सच्चाई तो यह है कि सलमान फ़ारिसी (रज़ि॰) की हदीस एक ख़ास ज़ेहनी कैफ़ियत को बयान करती है, किसी आम शरई हुक्म को नहीं।

इसी नज़रिए से हम इमाम अहमद (रह॰) की उस हदीस पर भी नज़र डालते हैं जिसे उन्होंने अबू-असीब से रिवायत किया है कि एक रात नबी (सल्ल॰) अपने घर से निकले और मेरे घर के पास से गुज़रे। उन्होंने मुझे आवाज़ दी। मैं आप (सल्ल॰) के पास आया। फिर आप (सल्ल॰) अबू-बक्र (रज़ि॰) के मकान के पास से गुज़रे और उन्हें भी आवाज़ दी। वे भी आ गए, फिर उमर (रज़ि॰) के मकान पर गए और उन्हें भी आवाज़ दी और वे भी आ गए। फिर आप (सल्ल॰) चले यहाँ तक कि एक अनसारी के बाग़ में पहुँचे और उनसे कहा कि हमें कुछ खिलाओ। वे अनसारी खजूर का एक गुच्छा लाए और आप (सल्ल॰) के सामने रख दिया। आप (सल्ल॰) और आपके साथियों ने उसमें से खाया। उसके बाद आप (सल्ल॰) ने ठंडा पानी मँगाकर पिया और फ़रमाया, "क़ियामत के दिन इसके बारे में भी तुमसे सवाल किया जाएगा।" यह सुनकर उमर (रज़ि॰) कहने लगे कि ऐ अल्लाह के नबी! क्या क़ियामत के दिन इसके बारे में भी हम से पूछ-गछ की जाएगी? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "बेशक मगर तीन चीज़ों के बारे में—

कपड़े का एक टुकड़ा जिससे इनसान अपने जिस्म को ढाँप सके, रोटी

का टुकड़ा जिससे अपनी भूख मिटा सके या वह कोना जिसमें दाख़िल होकर वह गर्मी और सर्दी से बच सके।" (हदीस : मुसनद अहमद)

एक दूसरी रिवायत में है कि आदम की औलाद को इनके अलावा और किसी बात का हक़ नहीं है और इस रिवायत के बयान करनेवाले हज़रत उसमान-बिन-अफ़्फ़ान (रज़ि॰) हैं, जिसमें इस तरह कहा गया है कि एक घर रहने के लिए, एक कपड़ा सतर-पोशी के लिए और रोटी का टुकड़ा और पानी।

इसी बात को बैहक़ी ने इस तरह लिखा है, "हर वह चीज़ जो मकान के छाया से, रोटी के टुकड़े से और आदम की औलाद की सतरपोशी के कपड़े से ज़्यादा हो उसमें आदम की औलाद का कोई हक़ नहीं।" हसन बसरी (रह॰) ने इस हदीस के बयान करनेवाले से, जो कि ख़ूबसूरती को बहुत पसन्द करता था, पूछा कि तुम इस हदीस पर अमल क्यों नहीं करते? उसने जवाब दियाः ऐ अबू-सईद! दुनिया मुझे पकड़ के बैठ गई है।

मेरे ख़याल में यह नौजवान इससे अच्छा जवाब दे सकता था। अल्लाह की किताब में मौजूद ज़वाब। दुनिया से फ़ितरी लगाव के बजाए उसे इस आयत को पेश करना चाहिए था—

> "ऐ नबी! इनसे कहो, किसने अल्लाह की उस ज़ीनत (शोभा) को हराम कर दिया है जिसे अल्लाह ने अपने बन्दों के लिए निकाला था और किसने अल्लाह की बख़्शी हुई पाक चीज़ें हराम कर दी? कहो, ये सारी चीज़ें दुनिया की ज़िन्दगी में भी ईमान लानेवालों के लिए हैं और क़ियामत के दिन ख़ासतौर पर उन्हीं के लिए होंगी।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-32)

अगर हम अपनी आम ज़िन्दगी में इन बयान की गई रिवायतों को अमल में लाएँगे तो यह दुनिया वीरान होकर रह जाएगी।

फिर क्या ये सारी रिवायतें बकवास हैं?

शायद कुछ लोगों को गुमान हो कि मैं ऐसा ही समझता हूँ? नहीं, ऐसी बात नहीं है, बल्कि ये एक ख़ास दायरे में एक ख़ास मक़सद के लिए कही गई हैं। ये दवाओं के कुछ घूँट हैं जो इनसान को इसलिए पिलाए गए हैं कि वे दुनिया में इस क़दर मसरूफ़ और मशग़ूल न हो जाएँ कि बाज़ महरूमियों

को बदबख़्ती समझने लगें।

इस दुनिया में बहुत-से लोगों को सिर्फ़ बुनियादी ज़रूरत की चीज़ें ही मिल पाती हैं, लेकिन फिर भी वे मर नहीं गए।

जंगों और मुसीबतों के वक़्तों में कितने लोगों को इस दायरे में ज़िन्दगी काटनी पड़ी फिर भी वे ज़िन्दा रहे।

कितने लोग ऐसे भी हैं जिन्हें उनसे दुगनी और चौगुनी रोज़ी दी गई, लेकिन उन्होंने न तो शुक्र अदा किया और न ही उस एहसान की क़द्र पहचानी। इस हदीस के बयान करनेवाले हज़रत उसमान-बिन-अफ़्फ़ान (रज़ि०) एक मालदार सहाबी थे, लेकिन उन्होंने अपने शुऊर से आख़िरत की कामयाबी चाही और कंजूसी और लालच की ज़िल्लतों में नहीं फँसे।

बहुत-सी रिवायतों और हदीसों को समझने के लिए फ़िक़्ह (शरीअत के नियमों) की गहरी जानकारी ज़रूरी है।

शब्दों के बन्दों ने आलमे-इस्लाम को ठप कर दिया है, जैसे कोई गधा किसी घाटी में जाकर रुक जाए, न आगे बढ़े न पीछे हटे। बल्कि उन्होंने आलमे-इस्लाम को कुछ मैदानों में तो पत्थर के दौर में पहुँचा दिया है।

इस सतह पर रहनेवाले लोग किसी बड़ी दावत को कामयाबी के साथ नहीं पहुँचा सकते। इस दुनिया की ज़िन्दगी पर ताक़त और महारत ही उसूलों और मज़हबों की मदद का सिर्फ़ एक ज़रिआ है।

जिस वक़्त शुरू के ज़माने के मुसलमान दुनिया की दो बहुत बड़ी सल्तनतों रोम (रूम) और फ़ारस से टकराए थे तो वे कामयाबी के ज़्यादा हक़दार थे, क्योंकि वे उस वक़्त राइज (प्रचलित) मैदानों और हथियारों में उनके बराबर थे, लेकिन हक़ पर ईमान और अल्लाह की ताईद और मदद में उनसे कहीं बढ़कर थे।

इसके बाद फिर गिरावट और पस्ती का दौर शुरू हुआ और मुसलमान आम ज़िन्दगी के धारों से कटते गए और अजीबो-ग़रीब फ़िक्रों और नज़रियों के ग़ुलाम होते गए। उन्होंने ग़लती से यह समझ लिया कि दुनिया के फ़ितनों और बिगाड़ों पर क़ाबू पाने का ज़रिआ यह है कि दुनिया ही को ठोकर मार दो और इम्तिहान में कामयाबी हासिल करने के लिए मेहनत-मशक़्क़त के

बजाए बेहतर यह है कि इम्तिहान ही में न बैठो।

उन्हें क़ुरआन मजीद की यह तालीम याद नहीं रही कि यह दुनिया इनसानों के लिए बनाई गई है और इस दुनिया में पैर जमाना पहली और दूसरी ज़िन्दगी की कामयाबियों का एक हिस्सा है। इसके बजाए वे फ़क़ीरी और तन्हाई की ज़िन्दगी गुज़ारनेवाली बातों के फ़ितनों में पड़कर रह गए।

इमाम मावरदी (रह॰) अपनी मशहूर किताब 'अदबुद्दुनिया-वद्दीन' में लिखते हैं–

"अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है कि तुममें से सबसे बेहतर वह नहीं है जिसने आख़िरत के लिए दुनिया को छोड़ दिया, न वह जिसने दुनिया के लिए आख़िरत को छोड़ दिया, बल्कि तुममें सबसे बेहतर वह है जिसने दोनों से लिया।"

अली (रज़ि॰) के सामने दुनिया की बुराई की गई तो उन्होंने कहा कि दुनिया उसके लिए सच्चाई की जगह है जो इसे सच्चाई के साथ बरते और उसके लिए नजात की जगह है जो इसको ख़ूब अच्छी तरह समझे और उसके लिए मालदारी की जगह है जो इससे सफ़र का सामान ले।

किसी दानिशमन्द का कहना है कि अपनी इज़्ज़त-आबरू बचाने के लिए कमाना दुनिया-तलबी नहीं है, न बदन को रिज़्क़ (रोज़ी) पहुँचानेवाली चीज़ हासिल करना लालच है।

इन सब चीज़ों में एतिदाल और बीच का रास्ता अपनाने की ज़रूरत है।

अच्छा मनोरंजन

आज की तहज़ीब (सभ्यता) उस नुमायाँ साइंसी तरक़्क़ी की पैदावार है, जहाँ तक इनसान सदियों की कड़ी मेहनत और क़ीमती-से-क़ीमती तजरिबों के बाद पहुँचा है। यह हैरत की बात भी नहीं थी कि इनसान इस कायनात के राज़ों और छिपी ताक़तों के राज़ का पता लगाकर अपनी मआशी और दूसरी तरक़्क़ियों में इस्तेमाल करे। बल्कि यह बात हिकमत और अक़्लमन्दी के ज़्यादा क़रीब होती इसके मुक़ाबले में कि इन खोजों को ख़ुद तहज़ीब को बरबाद करने और लोगों को सामूहिक ख़ुदकुशी के रास्ते पर डालने के काम

में लगा दिया जाता।

आम औद्योगिक तरक़्क़ी ने लोगों को वे चीज़ें मुहैया कर दी हैं जो पहले सिर्फ़ बादशाहों और राजाओं को ही हासिल होती थीं। तरह-तरह के खाने-पीने की बेहतरीन चीज़ें, रेशम से ज़्यादा नर्म और ख़ूबसूरत रंगीन कपड़े, घोड़ों, गधों वग़ैरा की जगह हवाई जहाज़ और कारों जैसे आने-जाने और सामान लाने और ले जाने के साधन और गानेवालियाँ जो पहले अमीरों की महफ़िलों में गाया करती थीं, अब उनकी आवाज़ें झोपड़ियों तक आसानी के साथ पहुँच रही हैं और मज़दूर और किसान भी उनपर सिर धुनते हुए सो रहे हैं। कुछ रुपयों में इनसान पूरब से पश्चिम तक बात-चीत कर सकता है। हो सकता है कि आनेवाले दिनों में इससे भी ज़्यादा आसानियाँ मुहैया हो जाएँ।

लेकिन इन सबके बावजूद इनसान ज़ेहनी कशमकश, उलझन और टेनशन का शिकार है, हवस और लालच हर हद पार करते जा रहे हैं, जो ज़्यादा मुयस्सर है उससे फ़ायदा उठाने को भी उस कमी की फ़िक्र मलियामेट कर रही है जो हासिल नहीं और लोगों और क़ौमों के आपसी हसद व कीना ने जहाँ-तहाँ नफ़रत व दुश्मनी की आग भड़का रखी है। दुनिया के बारे में कहा जाता है कि उसका जिस्म उसके दिमाग़ से बढ़ गया है। इनसाफ़ की बात यह है कि आज की दुनिया सिर्फ़ अपने आप में मगन है, वह अपने पैदा करनेवाले मालिक को भुला चुकी है, उस हक़ की इनकारी है और उसके सामने पेशी के सिलसिले में शक-शुब्हा में मुब्तला है। वह समझती है कि बस यही दुनिया और यही ज़िन्दगी सब कुछ है। इसके बाद इसका कोई वुजूद (अस्तित्व) नहीं।

अल्लाह तआला अपने बन्दों पर इतनी मेहरबानियाँ और करम करता है और बन्दों से सिर्फ़ एतिराफ़ (इक़रार) चाहता है। क्या यह बहुत भारी क़ीमत है? लेकिन बहुत-से लोगों के लिए यह बरदाश्त करने के क़ाबिल नहीं है।

"मेरे बन्दों में कम ही शुक्रगुज़ार हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-34 सबा, आयत-13)

इस बुनियाद पर मैं पुरानी और नई तहज़ीबों के सारे ईजादात

(अविष्कारों) को देखता हूँ। मुझे इस्लाम ने यही सिखाया है कि यह सब कुछ इनसान ही के लिए है। क्या अल्लाह तआला नहीं फ़रमाता—

"वही है जिसने तुम्हारे लिए वह सब कुछ पैदा किया जो ज़मीन में है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-29)

इसी लिए चीज़ों में अस्ल बात जाइज़ होना है, हराम होने के लिए यक़ीनी दलील चाहिए। हक़ीक़त यह है कि कुछ पागल मिज़ाज के लोग हराम क़रार देने के निहायत दिलदादा हैं। चीज़ों के बारे में उनके अमल का तरीक़ा अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) के अमल के तरीक़े के ख़िलाफ़ है। आप (सल्ल॰) को जब भी दो चीज़ों में इख़्तियार दिया जाता था तो आप (सल्ल॰) ज़्यादा आसान चीज़ इख़्तियार करते थे, शर्त यह है कि वह गुनाह की चीज़ न हो। वरना आप (सल्ल॰) उससे सबसे ज़्यादा दूर होते थे।

हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अपने आप पर सख़्ती से काम न लो वरना तुमपर सख़्ती की जाएगी।" कुछ लोगों ने अपने ऊपर सख़्ती से काम लिया तो उनपर सख़्ती की गई, गिरजाघरों और ख़ानक़ाहों में उन्हीं के बचे-खुचे लोग हैं। उन्होंने रहबानियत (संन्यास) ईजाद की जिसकी हिदायत अल्लाह ने उन्हें नहीं दी थी।

इमाम अबू-हामिद ग़ज़ाली (रह॰) बयान करते हैं—

"फ़न (कला, हुनर) उस ख़ूबसूरती को बयान करता है जिसे अल्लाह ने दुनिया में पैदा किया है या किसी फ़नकार (कलाकार) की अथक निजी मेहनत का वह नतीजा है जिसमें वह नायाब व यकता शाहकार की नक़्क़ाली करता है जिसे ख़ुदा ने दुनिया को अपनी कलाकारी और नायब क़ुदतर के नमूने के तौर पर अता किया है।"

इसके बाद और आगे लिखते हैं—

"शुरू से आख़िर तक दुनिया के हर हुस्न को अक़्ल, कान और आँख वग़ैरा, हवास (इन्द्रियों) से देखा, सुना और परखा जा सकता है, चाहे वह पहाड़ की चोटियों पर हो या पाताल में, इसकी हैसियत ख़ुदा के न ख़त्म होनेवाले ख़ज़ानों में से एक मामूली ज़र्रे (कण) से ज़्यादा नहीं है।"

नई तहज़ीब ने रेडियो, टेलीविज़न, वग़ैरा मनोरंजन के साधन ईजाद

किए। ज़ाहिर है ये मशीनें उन चीज़ों की ज़िम्मेदार नहीं जो उनपर पेश की जाती हैं। ज़िम्मेदारी तो पेश करनेवालों की है। वे चाहें तो फ़ायदेमन्द प्रोग्राम पेश कर सकते हैं और नुक़सानदेह प्रोग्राम रोक सकते हैं।

इन साधनों को सही ज़बान और बुलन्द अदब, अख़लाक़ और किरदार के प्रचार-प्रसार और आम करने में इस्तेमाल किया जा सकता है। बेहतरीन रिवायतों को फैलाने के लिए काम लिया जा सकता है, ज़रूरतमन्दों को इनके ज़रिए से मुख़्तलिफ़ हुनर व फ़न सिखाए जा सकते हैं और उनका मेयार (स्तर) ऊँचा उठाया जा सकता है, इस तरह बेरोज़गारी कम करने में मदद मिल सकती है।

यह भी मुमकिन है कि इन ज़रियों से विरासत में मिली और बाहर से आई हुई बुराइयों और ख़राब आदतों के ख़िलाफ़ जंग छेड़ी जाए। प्रसार-प्रचार के साधनों का बेहतरीन इस्तेमाल बहुत कुछ कर सकता है, लेकिन इसके लिए क़ौम में एहसास पैदा करना चाहिए। जिसमें अक़्ल व शुऊर न हो उसकी लगाम तो ज़ाहिर है दूसरों ही के हाथों में होगी।

मैं गाने-बजाने और तफ़रीह का मुख़ालिफ़ नहीं लेकिन यह ज़रूर महसूस करता हूँ कि मुसलमान और अरब-लोग काम कम करते हैं, गाते ज़्यादा हैं और तफ़रीह मेहनत करनेवालों का हक़ है, बेकारों-नाकारों का नहीं।

नग़मा (राग) कलाम है। अगर कलाम अच्छा है तो नग़मा भी अच्छा होगा और अगर कलाम बुरा है तो नग़मा भी बुरा होगा। अगर कोई अच्छे मानी-मतलब का नग़मा अच्छी आवाज़ में गाए तो कोई हर्ज नहीं। गन्दे और घटिया मानी-मतलब वाले नग़मों को सही नहीं कहा जा सकता।

राग या गाने के हराम होने के सिलसिले में कोई सही हदीस नहीं आई है। कुछ लोगों ने इस आयत को दलील बनाया है–

> "और इनसानों ही में से कोई ऐसी भी है जो दिलफ़रेब-कलाम ख़रीद कर लाता है, ताकि लोगों को अल्लाह के रास्ते से इल्म के बग़ैर भटका दे और उस रास्ते की दावत को मज़ाक़ में उड़ा दे। ऐसे लोगों के लिए सख़्त रुसवा करनेवाला अज़ाब है। उसे जब हमारी आयतें सुनाई जाती हैं तो वह बड़े घमंड के साथ

इस तरह मुँह फेर लेता है मानो कि उसने उन्हें सुना ही नहीं।"

(क़ुरआन, सूरा-31 लुक़मान, आयतें-6-7)

ख़ुदा की क़सम अगर कोई गुमराह करने के लिए संजीदा बात भी करेगा तो उसे अज़ाब होगा। रहा वह जो अपने थके मन को अच्छी आवाज़ और नग़मे से आराम पहुँचाता है तो उसका इस आयत से कोई ताल्लुक़ नहीं, क्योंकि इमाम इब्ने-हज़्म (रह॰) के मुताबिक़ अगर कोई गुमराह करने के लिए क़ुरआन मजीद का नुस्ख़ा भी हासिल करे तो वह मुजरिम होगा।

ऐसा लगता है कि शराब और बेहयाई जैसी चीज़ों के साथ नग़मा को जोड़ने और मनोरंजन-कला के माहौल में जो दुनियावी लज़्ज़त-पसन्दी आम है उसने कुछ आलिमों को नग़मा को हराम कर देने पर आमादा किया है। लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि नग़मा सुनते वक़्त ये सारी चीज़ भी इकट्ठा हों, बहरहाल अगर नग़मा हराम चीज़ों के साथ जुड़ा हुआ है तब रद्द कर दिया जाएगा और अगर हराम चीज़ों के साथ जुड़ा न हो तो कोई हर्ज नहीं।

इमाम शातबी (रह॰) ने अपनी किताब 'अल-एतिसाम' की पहली जिल्द में लिखा है कि कुछ लोग हज़रत उमर (रज़ि॰) के पास हाज़िर हुए और उन्होंने अपने इमाम की यह शिकायत की कि वह जब भी नमाज़ से फ़ारिग़ होता है नग़मा गाने लगता है। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने पूछा कि वह कौन है? लोगों ने बताया कि वह फ़ुलाँ आदमी है। आपने कहा, चलो उसके पास अभी चलते हैं, क्योंकि अगर हमने उसको बुलवाया तो वह यही समझेगा कि हम उसकी जासूसी करा रहे थे। हज़रत उमर (रज़ि॰) सहाबा की एक जमाअत के साथ तशरीफ़ ले गए। उस वक़्त वह मस्जिद ही में था। जब उस इमाम ने हज़रत उमर (रज़ि॰) को देखा तो वह खड़ा हो गया और उनका स्वागत करते हुए बोला, ऐ मोमिनों के अमीर! आपको क्या ज़रूरत पेश आ गई जो आप ख़ुद आ गए? अगर ज़रूरत मेरी थी तो मुझे ख़ुद आपकी ख़िदमत में हाज़िर होना चाहिए था और अगर ज़रूरत आपको थी तो आप मुझे बुलवा भेजते। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने फ़रमाया, ऐसी बात नहीं है। तुम्हारे बारे में मुझे कुछ ऐसी ख़बरें मिली हैं जो मुझे बुरी लगीं। उसने कहा, वे क्या ख़बरें हैं, ऐ अमीरुल-मोमिनीन? आप (रज़ि॰) ने कहा, क्या तुम

अपनी इबादत में कोई गाना गाया करते हो? उसने कहा, नहीं ऐसी बात नहीं है, बल्कि मैं अपने नफ़्स को कुछ बातों की नसीहत करता हूँ। हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा, मुझे सुनाओ, अगर वह अच्छा कलाम होगा तो मैं भी तुम्हारे साथ दोहरा दूँगा और अगर बुरा होगा तो मैं तुमको उससे रोक दूँगा। इसपर इमाम ने कुछ नसीहत भरे अशआर (शेर) पढ़े जिनमें नफ़्स को ख़ुदा से डरने की तरग़ीब (प्रेरणा) दी गई थी और अंजाम से डराया गया था। हज़रत उमर (रज़ि०) ने अशआर सुनकर कहा कि इस तरह के शेर जो भी चाहे पढ़ सकता है।

मेरे ख़याल में हज़रत उमर (रज़ि०) की ऊपर बयान की गई बात एक बेहतरीन नमूना है। हर वह कलाम जो शराफ़त, बुज़ुर्गी, मज़बूती और पाएदारी पैदा करे, अच्छा है। इस दुनिया में भला वह कौन आदमी हो सकता है जो हज़रत उमर (रज़ि०) से भी ज़्यादा अपने आपको ख़ुदा से डरनेवाला और परहेज़गार समझे? या उनकी मंज़ूर की हुई बात से भी अपने आपको पाक-साफ़ रखने की कोशिश करे!

संगीत भी नग़मा (राग) ही जैसी चीज़ है। अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) ने हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि०) को मीठी आवाज़ में क़ुरआन मजीद की तिलावत करते हुए सुना तो पसन्दीदगी का इज़हार करते हुए फ़रमाया, "तुम्हें दाऊद (अलैहि०) के घरवालों के मिज़मारों (मुँह के बाजों) में से कोई मिज़मार दिया गया है।" अगर मिज़मार कोई ग़लत आला (यंत्र) होता तो आप ऐसा न फ़रमाते।

नबी (सल्ल०) ने दफ़ और मिज़मार (बाजों) की आवाज़ सुनी है। मुझे नहीं मालूम कि कुछ लोगों ने इसे हराम कहाँ से क़रार दिया है।

हम कहेंगे कि हाँ यह ज़रूर है कि आवाज़ों के नफ़्सियाती असर पड़ते हैं, ख़ाहिशों (कामवासना) के भड़काने और हैजान पैदा करनेवाली आवाज़ों पर एतिराज़ किया जा सकता है।

हम फिर कहेंगे कि हमारी मिल्लत को संजीदगी की ज़्यादा और तफ़रीह की कम ज़रूरत है। अगर हमें ऊँचे दर्जे के और अच्छे फ़नकार मिल जाएँ तो इस फ़न को बिगाड़ के बजाए बनाव का ज़रिआ बनाया जा सकता है

और दुनियावी जज़्बात को भड़काने के बजाए शरीफ़ाना जज़बात को बेदार किया जा सकता है।

जहाँ तक तस्वीरों का मामला है। उनकी दो क़िस्में हैं और उनमें फ़र्क़ करना ज़रूरी है। एक क़िस्म मूर्ति की है और दूसरी काग़ज़ और कपड़ों वग़ैरा पर तस्वीरों की।

तस्वीर यानी कैमरे से लिया गया फ़ोटो या क़लम के ज़रिए से बनी तस्वीर तिब्ब, सिक्यूरिटी, इतिहास और समाजियात से लेकर बहुत-से साइंसी मैदानों में एक ज़रूरी चीज़ बन चुकी है। इसमें अस्ल बात शरई इजाज़त (जाइज़ होना) है। मुस्लिम की हदीस में "सिवाएं कपड़े में लकीर खींचने के" इसे अलग क़रार दिया गया है। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) से क़ुरआन मजीद की तिलावत की उजूरत (मज़दूरी) के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा, "कोई हरज नहीं, ये लोग मुसव्विर (तस्वीर बनानेवाले) हैं, अपने हाथ की कमाई खाते हैं।"

यह किसी ने नहीं कहा कि आइने में चेहरे की तस्वीर हराम है या यह कि किसी और तरीक़े से वह जाइज़ से हराम हो जाएगी।

हराम सिर्फ़ वह क़िस्म है जिसपर अक़ीदे और दीन-धर्म की कोई छाप हो, जैसे सलीब (ईसाई धर्म का निशान) वग़ैरा या कोई दीनी पहचान जो तौहीद (एकेश्वरवाद) के ख़िलाफ़ हो।

इसी तरह वह तस्वीर भी हराम होगी जो फ़ुहश (अश्लील) और भड़काऊ हो। रहे बुत (मूर्ति), तो क़ुरआन-हदीस से उनका हराम होना मालूम होता है। सिवाए इसके कि वे बच्चों का खिलौना या इसी जैसी कोई चीज़ हो। मैंने ख़ुद बहुत-सी जगहों पर उन मूर्तियों की पूजा होते देखा है। ख़ुद मिस्र में जमाल अब्दुल-नासिर का बुत (स्टेच्यू) एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा रहा था तो मैंने एक आदमी को देखा कि वह झुककर अक़ीदत का नज़राना पेश कर रहा है।

मैं जानता हूँ कि कुछ मुफ़्ती हज़रात हर तस्वीर को हराम क़रार देते हैं। चाहे वह स्टेच्यू हो या काग़ज़-कपड़े पर बनी तस्वीर। मुझे डर है कि क़ुरआन-हदीस को दलीलों और ग़लत अन्दाज़ से साबित करने से दीन-दुनिया

दोनों का नुक़सान होगा। मिसाल के तौर पर इमारत की तामीर के सिलसिले में आई हुई रिवायतों को लीजिए। बुख़ारी और मुस्लिम में हज़रत ख़ब्बाब-बिन-अरत (रज़ि॰) की रिवायत है कि मुसलमान को हर फ़ायदेमन्द चीज़ में ख़र्च करने का अज्र (नेक बदला) मिलेगा सिवाए उसके जो वह इस मिट्टी में लगाता है।

अबू-दाऊद में हज़रत अनस (रज़ि॰) की रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "हर इमारत बनानेवाले पर वबाल होगी, सिवाए उसके जो निहायत ज़रूरी हो।"

इस तरह की रिवायतों को अगर ज़ाहिरी मानी में लिया जाता तो न कोई शहर आबाद होता, न गाँव। लोग बस झोपड़ों में गुज़ारा करते, जिससे मुश्किल ही से लोग अपने को छिपा पाते।

सच्ची बात तो यह है कि इस तरह की रिवायतें हद से ज़्यादा आगे बढ़ने और लोगों पर बड़ाई जताने के लिए तामीर के सिलसिले में आई हैं। वरना महल बनाना बिला शुब्हा जाइज़ है।

जो लोग तस्वीर को बिलकुल ही हराम ठहराते हैं क्या वे महल बनाने को भी हराम क़रार देते हैं?

मुस्लिम मिल्लत के लोग अभी टेलीविज़न में तस्वीरें देखने को हराम क़रार देने में लगे हुए हैं, जबकि दूसरे लोग दिन-रात सैटेलाइट (Satellite) से उनके इलाक़ों के फ़ोटो लेने में मसरूफ़ हैं।

हम अगर अपनी शख़्सियत की हिफ़ाज़त चाहते हैं तो ऐसा बेहतरीन सीरत, अच्छा अमल, बुलन्द किरदार और इल्म की ऊँचाइयों तक पहुँचकर ही हो सकता है।